गीता एवं कुर्आन में सामञ्जस्य एवं श्री गीता का हिन्दी पद्यानुवाद

डॉ० मोहम्मद हनीफ खान शास्त्री

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनांक	सदस्य संख्या

गीता एवं कुर्आन
में
सामंजस्य एवं श्री गीता
का
हिन्दी पद्यानुवाद

गीता एवं कुर्आन में सामंजस्य एवं श्री गीता का हिन्दी पद्यानुवाद
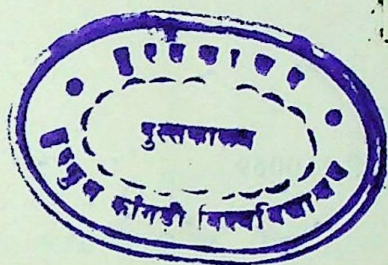
डॉ० मो० हनीफ खान शास्त्री
अनुसंधान सहायक, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
नई दिल्ली

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के
अनुदान से प्रकाशित ।

प्रकाशक
कृष्णा प्रकाशन
विश्वास पार्क, नई दिल्ली-110059

प्रथम संस्करण : 1994

मूल्य : 152.00

मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

समर्पण

यह दूसरी पुस्तक अपनी मां, बेगम सुन्नत अदा को,
समर्पित करता हूं, जिन्होंने जिन्दगी भर नेकी,
ईमानदारी, कृतज्ञता, पवित्रता, सदाचार और
परोपकार को ही अपना धन समझा
और यही वसीयत करके पंचभूतों
में विलीन हो गयीं

धन्यवाद ज्ञापन

इस पुस्तक के लेखन एवं प्रकाशन में जिन शुभ-चिन्तकों से सहयोग एवं प्रेरणा मिली, उनका मैं कृतज्ञ हूं। उनके प्रति हृदय से धन्यवाद ज्ञापन करना अपना परम कर्त्तव्य समझ रहा हूं।

1. अपनी बेगम मोहतरमा क़ैसर बानो उर्फ मुन्नी को—जिनसे मैंने उर्दू पढ़ा और उर्दू में ही उपलब्ध कुर्आन, हदीस व इस्लाम मजहब से संबंधित ढेर सारी लेखन सामग्री जुटाने में मदद मिली।

2. डॉ० गंगाधर पंडा—उप-शिक्षा सलाहकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली को जिनकी असीम अनुकंपा से यह पुस्तक जन-सुलभ हो सकी है।

3. पूर्व सांसद श्री केयूर भूषण जी—(सुन्दर नगर, रायपुर, मध्य-प्रदेश) को—जिनके सान्निध्य में रहकर निःस्वार्थ भाव से जन-सेवा एवं राष्ट्र-सेवा करने की प्रेरणा के साथ समन्वयात्मक विचारों को रचनात्मक स्वरूप देने तथा मनसा, वाचा, कर्मणा क्रियान्वयन करने की सलाहियत मिली।

4. सुप्रसिद्ध विद्वान सम्माननीय डॉ० विजय कुमार अग्रवालजी (निजी सचिव महामहिम राष्ट्रपति जी) को—जिनसे सौहार्द पूर्ण व्यवहार व इस तरह के कार्य में पूर्ण उत्साहवर्धक सहयोग, सुझाव एवं सहानुभूति मिली।

5. अपने परिचय के पर्याप्त धनी प्रतिष्ठित एवं निरीहजनों के मसीहा माननीय श्री शुभकरण दसाणीजी—12 न०, बड़रिया कालोनी, जयपुर, राजस्थान को—जिन्होंने प्रथम भेंट में ही अपनी असीम दयालुता की वर्षा करके सदा के लिए मुझे पूरी तरह आर्द्रित कर दिया। उनकी ही विशेष अनुकंपा से राष्ट्रहित में निरंतर प्रज्वलित ज्योति-जैनाचार्य श्री तुलसी जी का मैंने दर्शन किया और उनकी शिक्षाओं से लाभान्वित हुआ। इतना ही नहीं इन्होंने मेरे प्रति अपनी अतिशय उदारता व्यक्त करके मुझे सदा के लिए ऋणी बना लिया।

6. निश्छल भाव से सभी धर्मों के प्रति अटूट आस्था रखनेवाले सच्चे धर्म-निरपेक्ष, मानवता के प्रति समर्पित, पण्डित ओम प्रकाश,

कौशिक—कार्यालय मंत्री—दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति, 4679, नया बाजार, दिल्ली-6 को जिनके देवत्व से मुझे भरपूर लाभ मिला है। जिनकी उदारता, दयालुता और सहृदयता से मेरा निरन्तर उत्साहवर्द्धन होता आ रहा है। इनके ही सौजन्य से प्रथम कृति महामहिम राष्ट्रपति जी को भेंट करने का अवसर मिला।

7. **राष्ट्रपति स्टेट को मस्जिद के हेड पेश इमाम मौलाना ताहिर हुसैन साहब को**—जिन्होंने कौमी इकजहती का काम समझकर इस पुस्तक के लेखन में मेरा बराबर हौंसला आफजाई किया।

8. **पुरखुलूस जनाब इम्तियाज अहमद सिद्दीकी साहब, जनरल सेक्रेटरी, ऑल इण्डिया फ़ोरम फॉर यूनिटी एण्ड इंटीग्रेशन**—62/3डी काली बाड़ी मार्ग, नई दिल्ली, को—जो हर अच्छे लोगों से मेरा परिचय कराते हुए नेशनल इंटीग्रेशन के खातिर इस पुस्तक के लेखन में मेरे लिए बराबर साहस एवं सामग्री जुटाते रहे।

9. **पण्डित लखन लाल शास्त्री**—अवकाश-प्राप्त अध्यापक, कस्वा दुद्धी, जिला सोनभद्र, उत्तर प्रदेश को—जिन्होंने सबसे पहले श्रीमद्भगवत्गीता पढ़ने की सलाह दी।

10. **राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के** श्रीमती मीना भसीन, कुमारी गंगा कनियाल, श्री अनिल कुमार नौडियाल, श्री रोहतासजी एवं मौर्याश्री भुवनेश कुमारजी को, जिन लोगों ने धर्म समन्वय कार्य के प्रति निष्ठा रखते हुए धार्मिक एवं राष्ट्रीय एकता कायम रखने की आकांक्षा को शुभ कर्म समझकर बड़ी ही उदारतापूर्वक यत्र-तत्र संशोधन करते हुए इस पुस्तक के समस्त पृष्ठों का टंकण कार्य किया।

11. **आप सबको**—क्योंकि आप सबों के आशीर्वाद से ही यह पुस्तक आपको भेंट कर सकने में समर्थ हो पा रहा हूं।

मोहम्मद हनीफ खान शास्त्री

विशम्भरनाथ पाण्डेय
संसद सदस्य (राज्य सभा)
भू० पू० राज्यपाल, उड़ीसा

1, लोदी एस्टेट
नई दिल्ली-110003
फोन : 4629870
दिनांक : 29-10-92

डॉ० मधुसूदन मिश्र,
उपनिदेशक शैक्षणिक,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली

प्रिय डॉ० मिश्रजी,

आपका कृपा पत्र फा० सं०—आर०एस०के०एस०/पीयूबी/जीएनटी/102/133/91/996 दिनांक 24-08-1992 मुझे यथासमय प्राप्त हो गया था। आपने गीता और कुर्आन के सामंजस्य और श्री गीता के हिन्दी पद्यानुवाद के कुछ पृष्ठ के नमूने मुझे प्रेषित किये। उनकी भाषा, विषयवस्तु, मौलिकता एवं शैली आदि का मैंने मूल्यांकन किया। इस्लामी संस्कृति जिस समय से भारतीय संस्कृति के सम्पर्क में आयी, उसी समय से इस्लामी संस्कृति के विद्वानों का ध्यान श्रीमद् भगवद्गीता की ओर गया। प्रसिद्ध सूफी सन्त बू अली शाह कलन्दर ने गीता और कुर्आन का समन्वयात्मक अध्ययन करने के बाद लिखा—"सच यह है कि एक ही हकीकत की आवाज सारी दुनिया में गूंज रही है। गीता हिन्दुस्तान की कुर्आन है और कुर्आन अरब की गीता।"

गीता में धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि "जो आदमी अपने आप पर काबू पाकर, अपनी इन्द्रियों को जीतकर, मेरे-तेरे की भावना से ऊपर उठकर अपने निजी सुख-दुःख, हानि-लाभ की परवाह न करते हुए दूसरों के हित में लगा रहता है और दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझकर पूरा करता है, वही धर्मात्मा है।"

गीता के अनुसार नरक के तीन दरवाजे हैं—काम, क्रोध और लोभ। सच्चा ज्ञान वही है कि आदमी अपने अन्दर सबको और सबके अन्दर एक ईश्वर को देखे। सिर्फ इसी तरह अपने ऊपर संयम रखकर दूसरों की सेवा के जरिए अपनी आत्मा को पवित्र करते हुए अपने अन्दर उस परमात्मा को साक्षात् करें, जो सबके दिलों में बैठा हुआ मुक्ति प्रदान करता है।

कुर्आन में सच्चाई, सबके साथ नेकी और इन्साफ पर जोर देते हुए जगह-जगह बताया गया है कि असली धर्म दूसरों के साथ नेकी है रीति-रिवाज नहीं, कुर्आन कहता है कि—"धर्म या नेकी इस बात में नहीं कि तुमने अपना मुंह नमाज के वक्त पूरब की तरफ कर लिया या पश्चिम की तरफ—धर्म यह है कि आदमी अल्लाह को माने, अपने अच्छे-बुरे कर्मफलों को माने, मन के नेक रुझानों को माने, संसार के सब धर्म पुस्तकों 'अगले-पिछले सब रसूलों' (पैगम्बरों, अवतारों, धर्म संस्थापकों) को माने, अल्लाह से प्रेम के नाते अपनी धन-दौलत में से नातेदारों को, अनाथों को, जरूरतमंदों को, राह चलतों को और भिक्षुओं को धन दे, गुलामों को आजाद कराने में अपनी दौलत खर्च करे। अल्लाह से दुआ मांगता रहे, जकात यानी गरीबों को खैरात देता रहे। जब कभी किसी से वायदा करे तो उसे पूरा करे और मुसीबतों में, तकलीफों में सब्र करे। जो लोग ऐसा करते हैं वही लोग नेक यानी मुत्तक्की और परहेजगार हैं।"

एक दूसरे आयत में कुर्आन कहता है—"लोगों को सिवा इसके और कोई आज्ञा नहीं दी गयी कि वे पवित्र दिल से अल्लाह से दुआ मांगते रहें और गरीबों को दान दें, यही वास्तविक दीनइस्लाम यानी धर्म है।"

कुर्आन इस बात पर जोर देता है कि—"बुराई का बदला भलाई से दो। अल्लाह खूब जानता है कि लोग क्या चाहते हैं।"

श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—"जो बात मैं तुझे सिखा रहा हूं यही विवस्वान ने मनु को, मनु ने इक्ष्वाकु को, इक्ष्वाकु ने दूसरों को, इसी तरह युग-युग में एक ऋषि ने दूसरे ऋषि को, एक आदमी ने दूसरे आदमी को सिखायी है। लोग इसे भूल गये हैं। और सब जगह मौजूद सब कुछ जानने वाले सर्व शक्तिमान परमात्मा के अन्दर वह सब ज्ञान मौजूद है।"

कुर्आन में यही बात बार-बार और तरह-तरह से कही गयी है। कुर्आन में लिखा है—"जो बात इस कुर्आन में कही गयी है वही सब पुराने धर्मग्रन्थों में कही गयी है। कोई कौम नहीं—जिसके अन्दर हादी यानी पथप्रदर्शन करने वाले न भेजे गये हों।"

"और अल्लाह ने जितने रसूल इससे पहले भेजे हैं, सबने यही उपदेश दिया है कि अल्लाह एक है और सबको केवल उसी की इबादत करनी चाहिए।"

"और जितने रसूल भेजे गये हैं उन सबने अपनी कौम की भाषा में ही उपदेश दिया है ताकि किसी के दिल में सन्देह न रह जाये।"

गीता में जिसे स्थितप्रज्ञ कहा गया है, कुर्आन में उसे सलीम अक़्ल वाला या कल्बे मुतमयिन्ना या नफ्से मुतमयिन्ना कहा गया है। मुतमयिन्ना का अर्थ है स्थित और सलीम का अर्थ है प्रज्ञा या बुद्धि। कुर्आन में जगह-जगह उस आदमी की तारीफ की गयी है जिसका कल्ब (मन) सलीम या मुतमयिन्ना या स्थितप्रज्ञ हो।

एक मुस्लिम विद्वान् लिखता है—"सलीम का अर्थ है जिस पर दुनिया की ख्वाहिशों, सुखों या दुःखों, जय या पराजय का असर नहीं होता, वह आदमी सलीम बन जाता है।"

गीता में लिखा है—"वही समझदार आदमी स्थितप्रज्ञ कहलाता है जिसका दिल दुःखों से बेताब नहीं होता हो और सुखों की चाह न करता हो। जो हर तरह के लगाव, डर और गुस्से से ऊपर उठ चुका है।" (2-56)

गीता में लिखा है—"जो आदमी अपनी प्रिय चीज को पाकर बहुत प्रसन्न नहीं हो और अप्रिय वस्तु को पाकर दुःखी न हो और अपनी बुद्धि को सदा स्थिर और ठीक रखकर ईश्वर में लगाये रखे उसे ही ईश्वर मिल सकता है।" (5-20)

कुर्आन में भी लिखा है—"ताकि तुम उस चीज पर जो तुम्हारे हाथ से निकल गयी—उसके लिए रंज न करो और जो चीज अल्लाह ने तुम्हें दी है उस पर इतराओ नहीं।" (अलहदीद-23)

गीता कहती है : "ब्रह्मनिर्वाण उन्हीं लोगों के लिए है जिन्होंने अपनी आत्मा को जान लिया है।" (5-26)

हजरत मुहम्मदसाहब ने कहा है—

"जिसने अपने आपको पहचान लिया उसने अपने रब को पहचान लिया।"

गीता कहती है—"आदमी का आपा ही उसका दोस्त है और उसका आपा ही दुश्मन है!"

"उसी आदमी का आपा उसका दोस्त हो सकता है जिसने अपने आपे को जीत लिया है। और जिसने अपने आपे को नहीं जीता उसका ही आपा दुश्मन हो जाता है।" (6-5)

कुर्आन में लिखा है—"वही आदमी अपना भला करेगा जिसने अपने आपे को पाक साफ किया और वह अपना भला नहीं कर सकता जिसने अपने आपे को नापाक किया या गिराया।"

हजरत मुहम्मदसाहब की दलील है—"तुम्हारा सबसे बड़ा दुश्मन तुम्हारा आपा है।"

गीता और कुरान में इसी तरह की सैकड़ों समानताएं विद्यमान हैं। डॉ० मुहम्मद हनीफ खां ने—इसी तथ्य को संक्षेप में गीता और कुर्आन के सामंजस्य में वर्णन किया है। डॉ० मोहम्मद हनीफ खां ने गीता का हिन्दी पद्यानुवाद बड़े सरल और लय भरे शब्दों में किया है जिसे साधारण हिन्दी ज्ञान वाला भी पढ़कर आनन्द प्राप्त करता हुआ गीता का ज्ञानार्जन कर सकता है। हिन्दी अनुवाद के साथ-साथ संस्कृत श्लोक भी दिये गये हैं जो हिन्दी पद्यानुवाद को समझने में आसानी पैदा करते हैं।

डॉ० खान के इस प्रयत्न से साधारण पाठकों के मन में संस्कृत साहित्य के प्रति अभिरुचि बढ़ेगी। उनके इस प्रयत्न से जहां गीता का ज्ञान लोगों को सुलभ होता है वहीं कुर्आन के आयतों की भी सर्वधर्म समभाव की भावना उजागर होती है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक श्री मोहम्मद हनीफ खां की कठिन साधना और उत्कट सद्भावना का पूर्ण प्रमाण उपस्थित करती है और मैं इसकी सफलता की कामना करता हूं।

दिनांक : 28-10-1992

—विशम्भरनाथ पाण्डेय

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री
पूर्व कुलपति, काशी विद्यापीठ
वाराणसी (उ० प्र०)

दिनांक : 1-3-1991

श्रीमद् भगवद्गीता और कुर्आन शरीफ ऐसी व्यापक पुस्तकें हैं जिनमें सभी धर्मों के अनुयायियों की दिलचस्पी है और इसीलिए दोनों के अनगिनत अनुवाद हुए हैं और संसार की समस्त भाषाओं में हुए हैं। इसके अतिरिक्त गीता और कुर्आन की शिक्षाओं में कई बातों में इतना साम्य है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए भारत के कई शताब्दियों के इतिहास में मुसलमान साहित्यकारों ने गीता के फारसी और उर्दू में अनुवाद करने में काफी दिलचस्पी दिखायी है। आज तक यह सिलसिला कायम है।

किन्तु सम्भवत: यह पहला अवसर है जब एक मुस्लिम विद्वान् ने गीता का हिन्दी पद्य में अनुवाद करने का सफल प्रयत्न किया है। उर्दू के बारे में आमतौर पर यह भ्रान्ति है कि वह मुसलमानों की भाषा है। इस दृष्टि से हिन्दी और अन्य भाषाओं का मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। इससे अधिक निरर्थक बात और क्या हो सकती है। भाषाएं किसी सम्प्रदाय विशेष की नहीं होतीं। इस तथ्य का एक स्पष्ट और सशक्त प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक है। श्री मोहम्मद हनीफ खां न केवल हिन्दी के विद्वान् हैं अपितु उन्हें विभिन्न धर्मों में गहरी दिलचस्पी है और विभिन्न धर्मों के सार को ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इस पुस्तक में मिल जाता है। उन्होंने न केवल भूमिका में गीता और कुर्आन की शिक्षाओं की समानता दिखायी है अपितु प्रत्येक अध्याय के अन्त में जो नोट दिये हैं उनमें विभिन्न श्लोकों की कुर्आन की आयतों से तुलना की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक गीता का हिन्दी पद्य में अनुवाद होने के साथ-साथ गीता और कुर्आन का विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत करती है।

ऐसे प्रयत्न पहले भी हुए हैं और आइन्दा भी होते रहेंगे। उनकी सामाजिक अनिवार्यता स्पष्ट है। विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच हमेशा संघर्ष होता रहा है, शायद आगे भी होता रहे। साथ ही विभिन्न धर्मों की मूलभूत एकता पर भी हमेशा से जोर दिया जाता रहा है।

श्री सरस्वती सरन 'कैफ' का शेर है :

ये जंग है नूरो-तीरगी की सदा रही है सदा रहेगी।
चिरागे-ज़ुल्मत-शिकन हज़ारों जला करेंगे बुझा करेंगे।।

प्रस्तुत पुस्तक को भी इसी तरह का एक बड़ा चिराग कहा जा सकता है। ऐसे चिरागों की वर्तमान परिस्थितियों में, जब साम्प्रदायिक उन्माद बड़ा व्यापक हो उठा है, विशेष आवश्यकता है। इस दृष्टि से श्री मोहम्मद हनीफ का यह प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने बड़ी लगन और मेहनत से यह कार्य सम्पन्न किया है।

इस अनुवाद को पूर्णतः साहित्यिक दृष्टिकोण से परखना मेरे विचार से ठीक न रहेगा। अनुवाद में सृजन और अनुसरण की जो मिली-जुली प्रक्रिया होती है उसे किसी एक कसौटी पर परखना अन्याय होगा। अनुवाद में यदि अनुवादक ने सृजनात्मकता का तत्त्व अधिक कर दिया तो उसे पूर्ण साहित्यिक दृष्टि से भी देखा जा सकता है किन्तु अनुवाद यदि मूल लेखन की भावना के प्रदर्शन पर जोर दे तो उसे इसी संदर्भ में परखना चाहिए।

मेरे विचार में यह अनुवाद दूसरी श्रेणी में आता है और मूल श्लोकों की भावना के स्पष्टीकरण में काफी सफल हुआ है। हर जगह इस तथ्य को देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ :

अर्जुन उवाच :

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलित मानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।(6-37)

इसका अनुवाद है :

यत्न मन्द होने के कारण योग भ्रष्ट हो जाता है।
पर श्रद्धा पाता जो, मोहन, कैसे गति को पाता है।।

इसी प्रकार एक और उदाहरण प्रस्तुत है :

अधिभूतं क्षरो, भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽयमेवात्र देहे देहभृतां वर।।(8-4)

इसका अनुवाद है :

नाशवान अधिभूत रूप है जीवरूप अधि दैवत है।
इस तन के अधियज्ञ जीव जो शुद्ध यज्ञ से निर्मल है।।

इसी प्रकार सारे अनुवाद में मूल को हिन्दी पाठकों के लिए सुगम बनाने का सफल प्रयत्न किया गया है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक श्री मोहम्मद हनीफ खां की कठिन साधना और उत्कट सद्भावना का पूर्ण प्रमाण उपस्थित करती है और मैं इसकी सफलता की कामना करता हूं।

दिनांक 1-3-1991 —प्रोफेसर राजा राम शास्त्री

विनम्र वचन

श्रीमद्भगवद्गीता को समझने के लिए सर्वप्रथम यह जान लेना चाहिए कि श्री कृष्ण जी ने गीता का उपदेश स्वयं ब्रह्ममय होकर दिया है[1]। जैसा कि गीता में ही ब्रह्ममय होने का योग साधन और नियम आदि वताया गया है।

मौलाना कयूम जालन्धरी ने भी अपनी किताब 'गीता और कुर्आन' में यही लिखा है कि श्री कृष्ण जी ने गीता का उपदेश 'फनाफिल्लाह' (ब्रह्ममय) होकर दिया है। इस्लाम में प्रसिद्ध सन्त मन्सूर[2] आदि के लिए भी यही बात कही जाती है।

सरदार पूर्ण सिंह ने लिखा भी है—

"किया दावा अनल हक का,
हुआ मंसूर आलम का"··· (सन्तों की सहिष्णुता से)

हालांकि विद्वानों या उलेमाओं की निगाह में इस दावे को अल्लाह (ब्रह्म) की तौहीन समझा गया है। लेकिन इस गहराई में पड़ना मुझ नासमझ के लिए मुनासिब नहीं है; मैं तो सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि अल्लाह (ब्रह्म) ही सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है और पूरे ब्रह्माण्ड में फैले जड़-चेतन प्रत्येक जुबान पर उसका अपना अधिकार है। किस जुबान से क्या कहता है या किस जुबान से क्या कहलवाता है; खुदा ही जाने।

मैं तो सिर्फ गीता और कुर्आन के एक ही मतों, उपदेशों और उनसे प्राप्त

---

1. इनसे पहले ऋग्वेद के मण्डल 10, अध्याय एक, सूक्त संख्या 125, (आत्म सूक्त) में अम्भृण ऋषि की पुत्री वाक् देवी ने भी स्वयं को ब्रह्ममय कहते हुए सभी गुण स्वयं में बताये हैं, जो श्री कृष्ण जी ने भगवद्गीता के अध्याय 7-9-10 में स्वयं के लिए कहा है।
2. मन्सूर से पहले—मुहीउद्दीन इब्ने अरबी (फल सफे हमा ओस) एवं शाह वली उल्लाह (फल सफे हमा अज ओस) ने इस मोकाम को पाया था।

ब्रह्म सन्देशों की ही बात करना चाहता हूं, जो सिर्फ हिन्दू और मुसलमान ही नहीं अपितु दुनिया के प्रत्येक लोगों के लिए ग्राह्य और हितकर है।

अगर हम द्वेषरहित होकर, उदारतापूर्वक देखें तो एक ही मत की दृष्टि से गीता में कुर्आन भी है या कुर्आन में गीता भी है।

अब प्रश्न यह है कि जब हमारे धर्म ग्रन्थों का एक ही उद्देश्य एकमात्र (ओ३म्) ब्रह्म या (अल्लाह) की ही उपासना करना है, फिर हम सब इन पर आस्था या ईमान रखने वाले लोग, वैमनस्य और साम्प्रदायिकता की आग में क्यों झुलस रहे हैं? क्यों मानवता का गला घोंटा जा रहा है? वे कौन महापापी दुरात्माएं हैं जो धर्म की आड़ में ज़हर घोल-घोलकर देश का अमन-चैन छीने जा रही हैं? किन कृतघ्नों का निजी स्वार्थ है; जो प्रभु की सुन्दरतम सृष्टि को नष्ट करने पर तुले हुए हैं?

इन सबका कारण सिर्फ एक ही समझ में आता है कि हम अपने धर्मों और मजहबों के नहीं, बल्कि अपने निजी स्वार्थों के अनुयायी हो गये हैं। अपने पवित्र धर्म-ग्रन्थों को सदा के लिए ताख पर रखते जा रहे हैं। एक-दूसरे की बुराई करके अपनी ही धार्मिक छवि धूमिल करते जा रहे हैं, यह जानते हुए भी कि **'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'**। या **'वहदहू ला शरीकलहू'**[1]।

बस इसी लालसा से प्रस्तुत प्रयास आपके सामने पेश कर रहा हूं कि धार्मिक सहिष्णुता से सामाजिक सद्भावना बनी रहे। साथ ही खुदा से दुआ करता हूं कि घर-घर में गीता और कुर्आन पढ़ने की सलाहियत पैदा हो और जन-जन में साफ-साफ उसका अमल दिखाई दे।—आमीन।

प्रस्तुत ग्रंथ का नाम 'मोहन गीता' रखने के चार मकसद हैं—एक तो मोहन (श्रीकृष्ण) जिन्होंने गीता का उपदेश दिया। दूसरे अल्लाह और अल्लाह के रसूल हजरत मोहम्मद मुस्तफा सलल्लाहो अलैही वसल्लम को भी हिन्दी जबान में मोहन ही कहा गया है जिनके तुफैल से कुर्आन शरीफ नाजिल हुआ। तीसरे मोहन दास कर्मचन्द गांधी, जिनकी गीता माता पढ़ने से मुझे प्रेरणा मिली। चौथा मेरा नाम—**मोहम्मद हनीफ खान** का संक्षिप्ताक्षर—**मोहन** है।

---

1. इस सन्दर्भ में आगे विस्तार से विचार किया गया है।

खण्ड-क

गीता और कुर्‌आन में सामञ्जस्य

अनुक्रम

अथाह सागर से

वैसे तो इस अथाह सागर रूपी गीता और कुर्आन से हजारों साल पूर्व से ही विवेकी मानव अनवरत अमूल्य मोती निकालता आ रहा है और निकालता ही रहेगा। लाखों नहीं तो हज़ारों की संख्या में तो कहा ही जा सकता है कि इस गीता और कुरान की टिप्पणियां, अनुवाद और व्याख्याएं अवश्य ही लिखी जा चुकी हैं। पं० सुन्दर लाल ने अपनी किताब 'गीता और कुर्आन' में लिखा है—
"जितनी किताबें गीता और कुर्आन पर लिखी गयी हैं उतनी शायद दुनिया के किसी भी धर्म-ग्रन्थ पर नहीं लिखी गयी हैं।"

फिर मुझ जैसे 'अल्पज्ञ' व्यक्ति की क्या बिसात? मेरे द्वारा तो सूरज को 'दीया' दिखाने की बात है। फिर भी मैं अपनी उत्कट अभिलाषा को रोक नहीं सका और ईश प्रदत्त अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार इन महान् धर्म-ग्रन्थ रूपी अथाह सागरों से कुछ अनमोल मोती निकालकर, अपने ढंग से सजाकर आपके सामने पेश करने का प्रयास कर रहा हूं। इस लालसा से कि घर, गांव, समाज और देश-देशान्तर में इनकी आभा कभी धूमिल न हो सके और लोगों में सहिष्णुता, सौहार्द और प्रेरणा मिलती रहे, क्योंकि यह सब भगवत्कृपा से ही सम्भव हो सका है, इसलिए आपसे निवेदन है कि खुदा के लिए आप कम-से-कम मेरी तमन्नाओं पर ज़रूर गौर फर्माएं।

मेरी तमन्ना

प्रस्तुत प्रयास से मेरी तमन्ना सिर्फ इतनी ही है कि जो दयालु प्रभु सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करके सम्पूर्ण सृष्टि में स्वयं व्याप्त रहकर न्यायपूर्वक सम्पूर्ण सृष्टि का पालन कर रहा है, उसकी किसी भी तरह उपेक्षा न हो। क्योंकि आज देश के हर वर्ग, हर समाज में भ्रष्टाचार, अत्याचार, अनाचार, व्यभिचार, हत्या, लूट-खसोट, चोरी-डकैती, रक्त-शोषण आदि दुर्भावनाएं चरम सीमा को छूने लगी हैं। आज का मानव अपने निकट अपने ही जैसे मानव को देखकर सशंकित, संदिग्ध एवं भयभीत होने लगता है। आज व्यक्ति स्वयं को चाहे जितना भी बड़ा ऐश्वर्यशाली, प्रतिभाशाली, शक्तिशाली, सर्वसम्पन्न, सर्वसमर्थ समझ रहा हो। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि वह अपने आपको सुरक्षित नहीं समझ पा रहा है। आखिर क्यों?

मेरी समझ में इसका विशेष कारण आपसी वैमनस्य एवं साम्प्रदायिकता ही है। यह इसलिए कहना पड़ रहा है कि मनुष्य अपनी कृतघ्नता, लोलुपता एवं स्वार्थपरता के कारण ईश्वरप्रदत्त धर्म के सांचे में स्वयं को न ढाल सका। बल्कि धर्म को ही अपने सांचे में ढालने लग गया और धर्म को स्वार्थ की तराजू में तौलने लग गया। स्वार्थ के कारण ही आज समाज में कई तरह के सम्प्रदाय, फिरके, धर्म, मजहब, पंथ और मत बनते चले जा रहे हैं। परिणामस्वरूप आज का इन्सान अपनी इन्सानियत से बहुत दूर भागता चला जा रहा है। जब कि यह सबको पता है कि धर्म या मजहब हर दिलों को जोड़ने के लिए है, तोड़ने के लिए नहीं। देश में सभी धर्म सराहनीय हैं किन्तु देश के बहुसंख्यक लोग हिन्दू या मुसलमान हैं, इसलिए इन्हीं दोनों धर्मों पर विचार करना आवश्यक समझ रहा हूं।

हमारी संस्कृति और हमारे पुरखे

हज़ारों साल से हिन्दुस्तान में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का नारा लगाते आ रहे हैं। शुरू से ही हमारे वेदों ने हमें यही सीख दी—

"अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"

अर्थात् "यह मेरा है और यह गैर है, इस तरह की गिनती वे लोग करते हैं, जो छोटे दिल के हैं। लेकिन जो लोग बड़े दिल के हैं वे इस ज़मीन के सब रहने वालों को अपना ही कुटुम्ब समझते हैं।"

'वेद' जो सर्वप्रथम ईश प्रदत्त धर्मग्रन्थ कहा गया है—जिसका उपदेश, शिक्षाएं तब से लेकर आज तक हमारे समाज को आलोकित करती आ रही हैं। संभवतः यही कारण है कि भारत की उदारता हर युग में यथावत् बनी रही, दुनिया के किसी भी कोने में यदि संकट आया है तो भारत ने सबसे पहले बड़ी दिलेरी के साथ अपनी उदारता का परिचय दिया है। धरती ही नहीं पुराणों के अनुसार देवों के संकट पर भी इस देश के लोगों ने जान हथेली पर रखकर या जान गंवाकर अपने देश की उदारता का परिचय दिया है। शायद अपनी संस्कृति पर नाज़ करते हुए ही अल्लामा इकबाल ने लिखा है—

कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमां हमारा॥
यूनान मिस्त्र रूमां सब मिट गये जहां से,
बाकी मगर है अब तक नामोनिशां हमारा॥

किन्तु आज अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि हम अपनी उद्धतवृत्ति, स्वार्थ-परता एवं लोलुपता के कारण अपने देश की संस्कृति को खाक में मिलाते जा रहे हैं।

इस सन्दर्भ में अपने बचपन की बात बताने के लिए मेरा मन पुलक रहा है—मैं छोटा ही था; किन्तु उन दिनों की कुछ बातें ज्यों की त्यों मेरे दिलो-दिमाग में बैठी हुई हैं। मेरे कस्बे दुद्धी, जिला मिरजापुर (सोनभद्र) में मुहर्रम बड़े एहतराम के साथ इमाम हसन हुसैन की याद में मुसलमानों से कहीं ज्यादा हिन्दू भाई मनाया करते थे। उनके घरों से ज्यादा से ज्यादा ताजिये निकलते थे विण्ढम गंज—जिला सोनभद्र के प्रसिद्ध नेता मुन्नीलाल गुप्ता ने बताया कि हम लोग भी ताजिया रखते थे। 'श्री भोलानाथ साहू' हमारे दुद्धी कस्बे के बहुत ही सम्मानित, संभ्रान्त और प्रतिष्ठित नागरिक थे। ताजिये का जुलूस हर हाल में उनके घर तक जाता और उनके घर से इमाम हसन हुसैन के नाम से फतिहा नियाज होने के बाद ही वापस होता था। साथ ही एक सीपड़ भी साहू जी के यहां से निकलता था और वही जुलूस के सबसे आगे रहता था। उनका सीपड़ आज भी कुछ हिन्दू भाई सामूहिक रूप से निकालते हैं और वही सीपड़ जुलूस के आगे रहता है। इसके पहले दुद्धी के स्व०श्री इन्द्रजीत राम, पुत्र गनपतराम—जिनके पुत्र जयनारायण जायसवाल

हैं, इनके यहां से भी सीपड़ निकलता था। ग्राम निमिया डीह 'दुद्धी' के सुप्रसिद्ध कृषक, व्यापारी श्री छन्नूराम जी के यहां से तो अभी कुछ दिन पहले तक सीपड़ रखा जाता था। एक साल बड़ी हिम्मत जुटाकर मैंने एक व्यक्ति श्री दरगाही ठठेरा नामक बुजुर्ग से पूछ ही लिया कि आप लोग हिन्दू होकर भी ताजिए के जुलूस में बड़े आदर से भाग लेते हैं, इसका क्या कारण है।

उन्होंने जिस उदारता और सहृदयतापूर्वक जवाब दिया, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने बताया—"इमाम हुसैन ने मैदाने कर्बला में अन्तिम इच्छा व्यक्त की थी कि उन्हें चैन से जीने के लिए हिन्दुस्तान में जाने दिया जाए।"[1] सम्भवतः हिन्दुस्तान की संस्कृति, अमन, शांति से इमाम हुसैन अच्छी तरह परिचित थे, किन्तु उनकी अन्तिम इच्छा पर ध्यान न देकर अन्यायी दुश्मन यजीद ने उन्हें शहीद करवा दिया।

चूंकि अतिथि-सत्कार करना हमारे यहां परम धर्म समझा जाता है, अतिथियों को देवता समझा जाता है। अतः हम लोग इमाम साहेब की अन्तिम इच्छा के अनुसार उनकी आत्मा को अतिथि मानकर उनके स्मृति-दिवस के अवसर पर उनका सत्कार करके अपने देश की उदार संस्कृति का परिचय देते हैं। निःसंदेह यह बात बिल्कुल सच हो सकती है, क्योंकि उन दिनों भारत में भारतीय संस्कृति के सर्वोत्तम पोषक सम्राट् हर्ष का शासन था। उन्होंने 'अतिथि देवो भव' की परम्परा अवश्य ही निभाई होगी।

इसकी कोई प्रामाणिक पुष्टि तो नहीं मिल सकी है किन्तु छुट-पुट उल्लेखों से इतना अवश्य मिलता है कि सम्राट् हर्ष ने अपने अधीन समस्त राजाओं को आदेश दिया कि वे इमाम हुसैन की याद में उनके स्मृति दिवस पर उनकी आत्मा को अतिथि समझकर पूजा करें। चूंकि भारत की पूजा-पद्धति मूर्ति-पूजा है, इसलिए ताजिए के रूप में हर साल मुहर्रम में हजरत इमाम की आत्मा की अतिथि-सत्कार के रूप में पूजा होने लगी। इस प्रकार भारत के सभी हिन्दू-मुसलमान मिल-जुलकर ताजिया सीपड़ निकालने लगे और बड़ी ही आस्था से एहतराम करने लगे, फिर यह एक परम्परा-सी बन गयी। इस सन्दर्भ में आज भी बड़े-बूढ़ों से पूछा जा सकता है जो इतिहास तो शायद नहीं जानते होंगे किन्तु जिन्होंने इस परम्परा को अवश्य देखा, जाना और समझा होगा। इसकी पुष्टि कुछ इस बात से भी होती है कि

---

1. ठीक यही बात 1987 मुहर्रम की दसवीं तारीख, दस वजे के करीब लखनऊ दूरदर्शन से प्रसारित शाम-ए-गरीबां में एक मौलाना की तकरीर में दुहराई गयी थी।
—हिन्दी पाक्षिक पत्रिका 'नित्य नूतन' के 1 अक्टूबर 1985 के अंक में सैयद महमूद नकवी द्वारा भी यही बात कही गयी है।

ताजिया सीपड़ आदि रखने का प्रचलन भारत के अतिरिक्त अन्य किसी मुस्लिम देश में भी नहीं है।

इस सर्वोत्तम सौहार्द में समान हिस्सेदारी निभाते हुए यहां के मुसलमान भाई भी वड़े ही हर्षोल्लास के साथ हिन्दू भाइयों के हर तीज-त्योहारों में सम्मिलित होते रहते थे। दशहरा में सब मिलजुल कर रावण को मारते और जलाते थे। दीवाली के लिए महीनों पहले से घरों, गली-कूचों की सफाई कराने में उसी उमंग से मुसलमान लोग जुटते थे जैसे हिन्दू भाई। दीवाली के दिन दीपों की सजावट से हिन्दू-मुसलमान के घरों को अलग-अलग छांट पाना असम्भव ही हो जाता था। होली के रंगों-गुलालों से सराबोर बेहिचक एक-दूसरे के गले मिला जाता था।

धन्य थे वे लोग जो अपने देश की संस्कृति की रक्षा हेतु हर सम्भव प्रयास करते और विश्व-बन्धुत्व की भावना रखते थे। ऐसे ही लोगों पर देश को गर्व भी था।

हमारी संस्कृति और हम

कितनी अफसोस की वात है कि आज अधिकांश मानव घंटों घिनौनी राजनीति पर वहस करने में लगा देता है, चल-चित्रों के नायक-नायिकाओं-खलनायकों, विदूषकों की चर्चा में और विना सिर-पैर की गप्पों में दिन भर समय व्यतीत कर देता है। लेकिन जिस दयालु प्रभु ने दुनिया का सारा वैभव, सारा सौन्दर्य, सारा अद्भुत ज्ञान, अद्भुत गुण सिर्फ हम मानव जाति के लिए दिया है, जिसका उपयोग हम खूब मजे में करते हैं, लेकिन वाह रे हमारी कृतघ्नता ! कि अपने सर्वदाता प्रभु, अपने परम दयालु प्रभु, अपने परम न्यायी प्रभु की चर्चा करने में अपनी तौहीन समझते हैं—उस प्रभु के प्रति सत्संग करने में आपस में ही शर्माते हैं।

हां, कुछ लोग तो चर्चा सत्संग आदि करते भी हैं, लेकिन उस प्रभु की आड़ में होकर वे अपनी ही प्रभुता प्रदर्शित करने लगते हैं । उस सत्संग में अपना ही महत्त्व प्रकट करने की ललक में स्वयं अद्भुत ज्ञानी होने का स्वांग भरते हैं और अपने पाखण्डी हाव-भाव से भोले-भाले अज्ञानी लोगों को मूर्ख बनाते हैं, अपने धर्म को महान् और अन्य धर्मों को अधम बताते हैं ।

जबकि हमारे बीच ऐसे महान्, परम् पवित्र, हितकारी, गुणकारी, सुन्दर, सुबोध सुसम्पन्न और जन-जन को सही जीवन जीने की नियमावली के रूप में ईश्वर ने स्वयं धर्म-ग्रंथ एवं शक्तिशाली, मर्यादित मार्गदर्शक भेजा, जिन्हें कहीं 'पयम्बर' और कहीं 'पैगम्बर' कहा गया है, जो पूरे ब्रह्माण्ड के ही गिरोह में आये । जैसाकि कुर्आन शरीफ में कहा भी गया है···हर जमाने के लिए अलग-अलग मार्ग-दर्शक भेजे गए और अलग-अलग किताबें हैं ।···

—कुर्आन शरीफ

और जो रसूल (ब्रह्म का संदेश देने वाला) जिस गिरोह में भेजा गया है, वह उसी कौम की भाषा बोलने वाला भेजा गया है ताकि उन्हें साफ-साफ समझा सके ।

—कुर्आन शरीफ, 14-4

कुर्आन शरीफ के उपर्युक्त उद्धरणों से साफ जाहिर होता है कि दुनिया के हर कोने में, हर जमाने में और हर भाषा में अल्लाह के पैगाम और पैगम्बर आए। इन्हीं को कहीं 'अवतार' और कहीं 'ब्रह्मदूत' माना गया। हमारी हिन्दुस्तान की भाषा में आए हुए सभी पैगम्बर भी हमारे लिए काबिले एहतराम यानी श्रद्धा एवं आदर के योग्य हैं, क्योंकि कुर्आन में कहा गया है—

"ऐ ईमान वालो, अल्लाह पर और उसके पैगम्बर पर, उसकी किताब पर उसने जो अपने रसूल पर उतारी है और उन किताबों पर जो पहले के रसूलों पर उतारी गयी हैं, उन सब पर ईमान लाओ, और जो कोई अल्लाह (ब्रह्म) पर, उसके फरिश्तों पर, उसकी सभी किताबों पर और सभी पैंगम्बरों और आखिरत के दिन पर ईमान नहीं लाया, वह काफिर है। यानि वह सच्ची राह से बहुत दूर भटक गया।"

—कुर्आन शरीफ, पारा-5, सूरह 4, आयत 13

अर्थात् मुसलमान वही है जो अपने पैगम्बर हजरत मुहम्मद की ही तरह सभी पैगम्बरों को माने और एहतराम करे। चूंकि कुर्आन पर ईमान लाए हैं तो कुर्आन की बात मानना हमारे लिए फर्ज है। अक्सर लोग काफिर का अर्थ सिर्फ हिन्दू ही समझकर दंगा-फसाद पर उतारू हो जाते हैं। यह बात मानवता के विरुद्ध है। उक्त आयत के मुताबिक मुसलमान के घर पैदा होने वाला भी काफिर हो सकता है। यहां तक कि पैगम्बर हजरत नूह अ० की बीवी-बच्चों को भी काफिर कहा गया है। दूसरे माने में काफिर कुफ्र करने वाले को कहा गया है। आजकल ऐसे ही लोगों को उग्रवादी कहा जा रहा है।

ब्रह्म या अल्लाह

अक्सर अल्लाह और ब्रह्म के नाम पर झगड़ा उठ खड़ा होता है, क्योंकि एक ही सर्वशक्तिमान अखण्ड मण्डलाकार को हिन्दू और मुसलमान दोनों भाई अलग-अलग रूप में देखते व समझते हैं, किन्तु दोनों एक ही हैं। ऐसा हर कौम के विद्वानों ने बताया है और इस एकीकरण का आश्चर्यजनक उदाहरण भी मौजूद है। जैसा कि भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने ओम् (ब्रह्म) की उपासना पर विशेष बल दिया है। सत्रहवें अध्याय में तो उन्होंने बताया कि·· और प्रत्येक सनातन धर्मी उस पर ब्रह्म परमेश्वर को 'ओम्' जैसे अत्यन्त सुन्दर और शिष्ट नाम से पुकारते हैं और हर कार्य में जप में, तप में, यज्ञ में, दान आदि में 'ओम्' का उच्चारण पहले करते हैं। उपनिषद्कारों ने 'ओम्' की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'ओम्' ब्रह्म का सबसे सुन्दर नाम है। ठीक इसी तरह इस्लाम मजहब में 'बिस्मिल्लाह' कह कर हर काम करने का आदेश है। 'बिस्मिल्लाह' का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है—

ब—साथ, शुरू
इस्म—नाम
इल्लाह—ब्रह्म (पूज्य) का
—अर्थात् (आरम्भ करता हूं) ब्रह्म के नाम के साथ
वैसे भी ॐ (ओम् और अल्लाह में काफी एकरूपता है)

अर्थ-विचार

इस्लाम धर्म की ओर से जैसा कि हमने बताया है कि ब्रह्म को ही अरबी भाषा में 'अल्लाह' कहा जाता है, तो आइये एक नजर हम अल्लाह के अर्थ पर विचार करें। उच्चारण भेद से 'अल्लाह' को 'अल्ला' भी कहते हैं और संस्कृत में उसका अर्थ इस प्रकार है—

अल्ला (अल्यते इति आ + चित, अलं भूषार्थे लाति गृह्णति इति ला +, च० त०) (अलतीति अलं, पर्याप्तः सनताति सर्वान् अति गृह्णति जानाति वा ल + क)

परमशक्ति परमात्मदेवता

—संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ

इसके साथ ही हम देखते हैं कि—तैत्तरीयोपनिषद्, कठोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, वृहदारण्यकोपनिषद्, केनोपनिषद् वायुपुराण, गोपथ ब्राह्मण, प्रश्नोपनिषद्, भगवद्गीता आदि ग्रंथों में ॐ (ओम्) की जितनी भी व्याख्याएं या टिप्पणियां मिलती हैं वैसी ही सभी व्याख्याएं अल्लाह के लिए कुर्आन शरीफ में मिलती हैं जिससे सिद्ध होता है कि अल्लाह या ब्रह्म दोनों कई नामों से एक ही महाशक्ति या सर्वशक्तिमान हैं क्योंकि ऋग्वेद में कहा भी गया है—'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति।' 'कुर्आन' में भी कहा गया है—जिस नाम से भी पुकारो अल्लाह के सब नाम अच्छे हैं।

—कु० पारा, 15, सर : 17 आयत 10

श्रीमद्भगवद्गीता

वैसे तो हिन्दू समाज में अगर हजारों नहीं तो सैकड़ों की तादाद में धर्मग्रंथ माने ही जाते हैं या यों कहा जाए कि दुनिया में जितने धर्म चल रहे हैं उनमें शायद ही किसी दूसरे धर्म की उतनी पुस्तकें हों, जितनी कि हिन्दू धर्म में हैं। मेरे ख्याल में इसका कारण यह है कि हिन्दू (सनातन) धर्म सबसे प्राचीन धर्म होने से समय-समय पर ऋषियों-महर्षियों ने वेदों की जितनी भी टिप्पणियां लिखीं या जितने भी

अपने विचार आदि लिखे, शायद वे सब धर्मग्रंथ माने जाने लगे किन्तु तमाम पुस्तकों को मिलाकर देखने से साफ-साफ जाहिर होता है कि इन सबका निकास या लगाव एक ही ईश्वर या अल्लाह से है क्योंकि उसी की कृपा से ही ऐसे अद्‌भुत विचार और अद्‌भुत ज्ञान प्राप्त होते हैं।

हिन्दू धर्म की पुस्तकों में वेदों का और खासकर ऋग्वेद का सबसे ज्यादा मान है, इस कथन की पुष्टि करने में वेद स्वयं ही सक्षम हैं, जैसा कि देखा भी जा सकता है—

वेद ईशवाणी के रूप में

वेदों के अलौकिक उपदेशों, मंत्रों में व्यापक शिक्षाओं की सार्थकता, विश्व-बन्धुत्व का व्यापक सन्देश, एकेश्वरवाद की प्रेरणात्मक भावनाएं और उसकी अखण्डता को देखते हुए, मैं क्या कोई भी आस्तिक विद्वान् यह अवश्य कहेगा कि वास्तव में वेद साधारण ग्रंथ नहीं हैं।

उक्त कथन की पुष्टि के लिए कुर्‌आन-शरीफ़ में अल्लाह ने स्वयं ही कहा है—"(ऐ पैगम्बर) हमने हर गिरोह के लिए एक शरीअत (धर्मशास्त्र) नियत कर दिया है जिस पर वो चलते हैं…"

—कुर्‌आन शरीफ़ पारा 17, सुर: 22, आयत सं० 67

इतिहासकारों और धर्मविदों के अनुसार सनातन धर्म (हिन्दू धर्म) अति प्राचीन है और इस गिरोह के मार्गदर्शन हेतु ईश्वर के उक्त कथनानुसार जो धर्म-शास्त्र मिला है वह वेद ही हो सकता है।

क्योंकि वेद स्वयं ही कहते हैं—

"अति सन्तं न जहात्यनिम् सतं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्य न ममार। न जोर्यति॥"

—अर्थववेद-1/8/32

"समीप होते हुए परमेश्वर को मनुष्य नहीं देख पाता और समीप होते हुए को नहीं छोड़ सकता। दिव्य गुणसम्पन्न परमात्मा के वेद रूपी काव्य को देखो। वह काव्य न कभी मरता है न कभी पुराना होता है।"

और भी…

(1) "पवमानस्य विश्ववित व्रते सर्गा असक्षत।
सूर्यस्येव न रस्मयः।"

—सामवेद-358

"हे सर्वज्ञेश्वर ! पवित्र करते हुए आपकी (वेदरूपी) धाराएं ऐसे छूटती हैं जैसे सूर्य की किरणें निकलकर धरती को प्रकाशमान कर देती हैं इसी तरह ईश्वर से वेद प्रकट होकर मनुष्य को सत्य मार्गों की ओर प्रवृत्त करते हैं।"

(2) "अज्ञानो वाचमिष्यसि पवमान विधपणि।
क्रन्दं देवो न सूर्यः।"

—सामवेद-960

"हे पवित्र स्वरूप ईश्वर ! उचित सूर्य की अन्तःकरण में वैदिक शब्दों को उत्पन्न करते हुए आप (वेद) वाणी को प्रेरित करते हैं।"

(3) तस्माद्यज्ञात्सर्व हुतः ऋचः समानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्यादजायत। 66

—यजुर्वेद-131/6

"जिस प्रकार विश्वाधार ईश में विद्युत, वायु, जल, चन्द्रमा, प्राण, सूर्य, प्रभृति दिव्यगतायुक्त पदार्थ—मानो वह बसा कर निवास करते हैं, वह वेद पालक जगदीश्वर की प्रशंसा के योग्य, उपदेश करने के योग्य, वेद का उत्तम प्रकार से उपदेश करते हैं।"

लेकिन वेद इतनी बड़ी चीज है, उनकी भाषा इतनी पुरानी है और एक-एक मंत्र के इतने-इतने अर्थ लगाये जा सकते हैं कि वे बड़े लोगों के लिए ही नहीं, बल्कि विद्वानों के लिए भी हजारों वर्षों से एक पहेली जैसे लगते हैं।

वेदों का ही निचोड़ उपनिषदों को माना जाता है और बहुत से उपनिषद् तो वेदों के ही हिस्से हैं, लेकिन उपनिषद् आमफहम नहीं हैं उन्हें समझ सकना या उनका रस ले सकना विरलों को ही बदा है। उपनिषदों के बाद समाज में 'भगवद्गीता' का सबसे ज्यादा मान है। गीता माहात्म्य में कहा गया है कि सभी उपनिषद् एक 'गाय' के समान हैं और भगवद्गीता उस गाय से दूहा हुआ 'दूध' और 'महान् अमृत' कहा गया है।

संस्कृत की पुस्तकों में जितना गीता का प्रचार है उतना किसी दूसरी पुस्तक का नहीं है। बापू ने अपनी 'गीता माता' में लिखा है—

"जो मनुष्य गीता का भक्त होता है, उसके लिए निराशा की कोई जगह नहीं है। वह हमेशा आनन्द में रहता है।"

—गीता माता, पृष्ठ 5, अन्तिम पंक्ति।

पं० सुन्दरलाल जी के कथनानुसार—"पिछले हज़ारों साल में जितनी टीकाएं या तफसीरें गीता पर लिखी जा चुकी हैं उतनी एक कुर्आन को छोड़कर शायद ही दुनिया की किसी पुस्तक पर लिखी गयी हों। इसमें शक नहीं, कम से कम अपने जमाने तक की हिन्दुस्तानी कल्चर का गीता सबसे बढ़िया और सबसे सुन्दर चोटी

का फूल है।"

किन्तु बड़े अफसोस के साथ कहना पड़ रहा है कि देश में लगभग 75 प्रतिशत ऐसे हिन्दू भाई होंगे जिन्होंने इस महान् धर्मग्रंथ का अध्ययन नहीं किया होगा और करीब 90 प्रतिशत ऐसे होंगे जिन्होंने ईश्वर प्रदत्त धर्मग्रंथ वेदों का दर्शन भी नहीं किया होगा। नतीजा सबके सामने ही है कि आज इंसानों के अन्दर इंसानियत देखने तक को नहीं मिलती। आये दिन वैमनस्य और साम्प्रदायिकता के घिनौने दंगे मानव और मानवता का गला घोंटने में ही लगे हुए हैं।

कुर्आन मजीद

जब हम कुर्आन शरीफ की बात कहते या सुनते हैं तो सीधे अल्लाह के कलाम की बात मानी जाती है। यकीनन इस धरती पर कुर्आन शरीफ हर इंसान के लिए ऐसी नायाब चीज है जिसकी कोई सानी ही नहीं। कुछ लोग इसे शाइरों की मन-गढ़न्त कल्पना ही बताते हैं लेकिन नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है क्योंकि कुर्आन शरीफ में अल्लाह ने खुद ही फर्माया है—

"इन्ना नहनु नज्जलनज जिक्र व इन्ना लहू लहाफिजून"

—कुर्आन शरीफ पारा-15, सूर : 14, आयत 9

अर्थात्—"हमी ने यह शिक्षा उतारी है और हमी इसके निगहबान (संरक्षक) भी हैं।" और भी कहा गया—

"और यह कुर्आन इस किस्म की पुस्तक नहीं है कि अल्लाह के सिवाय और कोई इसे बना लावे बल्कि यह पहले वाले कलाम की तस्दीक करता है और उन्हीं की तफसील है। इसमें सन्देह नहीं कि यह संसार के मालिक अल्लाह की ओर से उतरा है।"

—कु० श०, पारा 11, सूर : यूनुस, आयत 37

तभी तो अल्लाह के इन्हीं कलाम पर गर्व करते हुए अल्लाह के रसूल ने ऐलान करते हुए यह दावा किया कि—

"जो लोग इसे मन-गढ़न्त शाइरों की कपोल-कल्पित कल्पना बताते हैं, उन्हें बार-बार यह चुनौती है कि इस कलाम की तरह एक भी सूरः बना कर ले आयें लेकिन कभी भी किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। यह चुनौती एक-दो दिन के लिए नहीं बल्कि कयामत तक के लिए है, क्योंकि यह दावा अल्लाह ने खुद ही किया है, जो कुर्आन मजीद में द्रष्टव्य है।"

"व इन कुन्तुम् फी रैबिम्मिम्मा नन्जलना अला अब्दिना
फअतू बिसूरतिम्-मिम मिस्लिह वद्ऊ शुहदो अ-कुम
निन्दूनिल्लाहि इन कुन्तुम सादिकीन"

"अर्थात्—और जो हमने अपने बन्दे (मुहम्मद) पर (कुर्आन) उतारा है, अगर तुमको शक हो तो तुम इसी शक्ल का एक भी अध्याय (सूरत) बना लाओ और अगर तुम सच्चे हो तो अल्लाह के मुकाबले में जो तुम्हारे सहायक हों, उनको बुला लो।" —कुअर्‌ान मजीद, पारा एक, सूरत दो, आयत 21

कुर्‌आन की सुरक्षा

जैसा कि कुर्‌आन मजीद की सुरक्षा के लिए अल्लाह ने वचन दिया है वैसे ही पर्याप्त रूप से उसकी सुरक्षा हो रही है। कहीं से एक अक्षर का भी फर्क नहीं हो सका है—मौलाना सैय्यद अबुल आला मौदूदा ने अपनी पुस्तक 'रिसाला-ए-दीनयात' में लिखा भी है जिसके हिन्दी अनुवादक मुहम्मद फारूक खां की पुस्तक 'इस्लाम धर्म' के कुछ उद्धरण इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं—

1. कुर्‌आन जिन शब्दों में अवतीर्ण हुआ था, ठीक-ठीक उन्हीं शब्दों में मौजूद है। उसके एक अक्षर बल्कि एक मात्रा में भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

2. कुर्‌आन में विशुद्ध ईश्वरीय वाणी हमें मिलती है और उसमें किसी दूसरे का कलाम का लेशमात्र भी सम्मिश्रण नहीं है[1]।

3. कुर्‌आन जिस भाषा में है, वह एक जीवित भाषा है। संसार में आज भी करोड़ों व्यक्ति उसे बोलते हैं और करोड़ों व्यक्ति इसे जानते और समझते हैं। उसकी शिक्षा का सिलसिला संसार में हर जगह चल रहा है हर व्यक्ति उसको सीख सकता है साथ ही लगभग हर जगह ऐसे लोग हैं जो कुरान का अर्थ और उसे समझाने की योग्यता रखते हों।

4. कुर्‌आन में कोई भी बात ऐसी नहीं है जो बुद्धि के प्रतिकूल हो या जिसका प्रमाण या तजुरबे से उसे असत्य सिद्ध किया जा सकता हो। इसके आदेशों में अन्याय नहीं है। इसकी कोई भी बात मनुष्य को पथ-भ्रष्ट करने वाली नहीं है। इसमें अश्लीलता और अनैतिकता का चिह्न तक नहीं है। आरम्भ से अन्त तक पूरा कुर्‌आन उच्चकोटि की तत्त्वदर्शिता एवं बुद्धिमत्ता, न्याय, इन्साफ की शिक्षा, सन्मार्ग दर्शन, उत्तम आदेश और नियमों से परिपूर्ण है।

—इस्लाम प्रवेशिका, पृष्ठ 102 से 105

5. 'प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्' उक्त कथन की पुष्टि के लिए कुर्‌आन शरीफ को स्वयं ही देखा जा सकता है। जैसा कि इसकी हिफाजत के लिए अल्लाह ने वायदा किया है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आश्चर्यचकित कर देता है। जुलाई 1962 की बात है, श्री अच्युत भाई देश पाण्डेय, जो सन्त विनोबा भावे द्वारा लिखित 'रूहल कुर्‌आन' का हिन्दी अनुवाद 'कुर्‌आनसार' छपवाने के लिए जब वाराणसी जा रहे थे तो उनके साथ जो घटना घटी वह उन्होंने खुद ही लिखी है जो इस प्रकार है—'जाको राखे साइयां'।

'प्रकाशन के लिए' कुर्आन सार की मूल प्रति लेकर मैं वाराणसी जा रहा था। रेलगाड़ी में खूब भीड़ थी। हमने पुस्तकों की पेटी रेल में रखी और सवार हो ही रहा था कि गाड़ी खुल गयी। पेटी को एक भाई ने पकड़ रखा था, पर वह उनसे संभली नहीं। पेटी वहां से खिसकी और पटरी, गाड़ी का पहिया और प्लेटफार्म का पत्थर इसके बीच में पचास कदम तक रगड़ते-रगड़ते चली। यहां तक कि वह पेटी बाद में पहिये के नीचे आ गयी। अगर जजीर न खींची जाती तो शायद ट्रेन को दुर्घटनाग्रस्त भी होना पड़ता।

हम सबने समझा कि 'कुर्आन' की मूल प्रति और अन्य पुस्तकों का तो पटरी पर भूसा ही बन गया होगा और 'कुर्आन सार' का काम तमाम हो गया होगा। प्रभु की कृपा तो देखो कि किताबें पटरी के बाहर फेंकी पड़ी थीं और पेटी गाड़ी तले आ गयी थी। पेटी तो नेस्तनाबूद हुई, पर पुस्तकें और कापियां 'कुर्आन सार' की मूल प्रति और उसका उर्दू अनुवाद सब कुछ एक-एक पन्ना सही सलामत मिला। 'कुर्आन सार' की पाण्डुलिपि पर से रेल का पहिया गुज़रा मगर ऐसे हिस्से पर से जिस पर कोई अक्षर नहीं थे। अतः पाण्डुलिपि सुरक्षित रही।

कुर्आन शरीफ की आयतें दुहराते हुए मैं मन ही मन कहने लगा—

हे परमेश्वर! बुराई मेरी, भलाई तेरी,
तू ही मारता है, तू ही जिलाता है।

जुलाई 1962 —अच्युत भाई देश पाण्डेय
कुर्आन सार पृष्ठ 34

उक्त चमत्कारी घटना से साफ-साफ यह जाहिर होता है कि वह पवित्र धर्म ग्रन्थ 'कलाम पाक' अपनी सुरक्षा के लिए किसी का मोहताज नहीं है किन्तु बड़े खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि ऐसे अद्भुत महान् ग्रन्थ की शिक्षाए ग्रहण करने के बजाए सुन्दर सजीले और मखमली कपड़ों में लपेटकर खूंटी पर लटकाये रखते हैं और बस इसी बूते पर कट्टर मुसलमान बने फिरते हैं। नतीजा सामने ही है कि जो कुर्आन विश्व-बन्धुत्व की शिक्षा देने वाला है, जो कुर्आन सदाचार की शिक्षा देने वाला है, जो कुर्आन एक अद्भुत आदर्श की शिक्षा देने वाला है, जो कुरान कर्त्तव्यनिष्ठा की शिक्षा देने वाला है, जो कुर्आन अपनी शिक्षाओं की बदौलत दुनिया को अपनी ओर आकर्षित किए हुए है उसी पर ईमान लाने वाले हम मुसलमान भाई, भाई-भाई में ही फसाद करते फिरते हैं। भाई-भाई में ही एक-दूसरे के दुश्मन बने फिरते हैं। फिरकापरस्ती की बातें, मनगढ़न्त दकियानूसी की बातें, हमें इन्सानियत से बहुत दूर खींचकर गड्ढे में डालती जा रही हैं। कहां अन्य फिरके के लोगों को हमसे नसीहत मिलनी चाहिए थी; लेकिन अब वही लोग सोचते होंगे कि "कुर्आन ने मुसलमानों को शायद लड़ना ही सिखाया है।"

कहावत है—'घर का चिराग बुझ गया अपने ही हाथ से'

हमारी झूठी कट्टरपन्थी, हमारी नासमझी और हमारी दकियानूसी से अल्लाह का कलाम 'कलाम पाक' जिसके हम अनुयायी हैं, जिस पर हमारा ईमान टिका है, वही बदनाम हो जाता है लेकिन नहीं, कुर्‌आन पाक में ऐसी गन्दगी नहीं है क्योंकि अगर ऐसा होता तो इतनी कम उम्र में ही इस्लाम, कुर्‌आन दुनिया के कोने-कोने में नहीं छाया होता। इसके पैगम्बर मुहम्मद मुस्तुफा सल अल्लाहो इलैहे वसल्लम, दुनिया के नवी नहीं कहलाते।

अलवत्ता झूठी कावलियत की बदौलत, फितना फसादि (साम्प्रदायिकता) फैलाने के गरज से अर्थ का अनर्थ बताने वाले लोगों के प्रति कुर्‌आन शरीफ में वड़ी-वड़ी उलाहना की गयी है—"(पैगम्बर) वही है जिसने तुम पर (यह) पुस्तक उतारी, जिसमें से वाज आयतें 'मुकहम' स्पष्ट है जिसका अर्थ बिल्कुल साफ-साफ है और वही पुस्तक का आधार है और वाज आयतें 'मुतशाबिह' (अस्पष्ट) हैं। तो जिन लोगों के दिलों में कुटिलता है, वे कुर्‌आन पाक के उन्हीं मुतशाविह आयतों के पीछे पड़े रहते हैं और उसका मनगढ़न्त अर्थ निकालकर उसी के जरिये फितना फसाद या झगड़ा करना चाहते हैं, लेकिन उसका मतलब अल्लाह या पक्के ज्ञानियों के अलावा कोई नहीं जानता।"

—कुर्‌आन शरीफ, पारा 3, सुर : 3, आयत 6

सम्भवत: इसी मुतशाबिह भावना का शिकार होकर कुछ अन्य सम्प्रदाय के लोग स्थिति, वातावरण और आवश्यकताओं को ध्यान में रखे बिना ही कुर्‌आन शरीफ की कुछ आयतों का मनगढ़न्त अर्थ लगाकर समाज को गुमराह कर रहे हैं जिसका परिणाम साम्प्रदायिक दगों के अलावा कुछ और नहीं दिखायी देता। क्योंकि सही इन्सानियत तो यही है कि—यदि हम अपनी इज्ज़त चाहते हैं तो दूसरों की भरपूर इज्ज़त करें। कुर्‌आन में इस वात का पूरा-पूरा ख्याल रखा गया है।

मैं शायद प्रसंग से हटकर कुछ अलग ही बातें करने लगा, मेरा तो उद्‌देश्य है कि गीता और कुर्‌आन की समन्वित शिक्षाओं को आपके सामने प्रस्तुत करूं; तो आइये कुछ उदाहरण देखा जाए।

उदाहरण के लिए गीता और कुर्‌आन में सामंजस्य की कुछ झलक निम्नवत् है—

	भगवद्गीता		कुर्आन	
	अध्याय	श्लोक	सुर:	आयत
1. सृष्टि के बारे में	2	28	2	156
2. एकेश्वरवाद के बारे में	2	69	32	15
,,	18	61,62	अनगिनत स्थानों पर	
3. बिना किसी भेदभाव के इंसाफ व भलाई के बारे में	7	17	—	—
	11	55	5	8
	3	25	2	117
	6	32	6	152
			90	10-20
			16	126-128
4. अन्याय के विरुद्ध लड़ने के बारे में	2	3	2	216
5. काफिरों या आततायियों के विरुद्ध लड़ने से स्वर्ग लाभ तक के प्रलोभन के बारे में	2	37	4	74
6. निराहार या रोजे के बारे में	2	59	2	182
7. ईश्वर के प्रति समर्पित अन्न ग्रहण के बारे में	3	12, 13	6	118-121
8. पूर्वरीति का ही अनुसरण करने के बारे में	3	16	41	43
9. धार्मिक समादर के बारे में	3	26	6	102
10. ईश्वर के प्रति श्रद्धावनत होकर सत्कर्म करने के	18	56-57, 68-69	31	22
बारे में	3	31	2	112
11. ईशनिर्देश के विरुद्ध कार्य करने से सजा के बारे में	3	32	3	187-188
			2	208

12. अपने धर्म के प्रति निष्ठा के बारे में	3	35	3	138-139
13. सही ज्ञान के बारे में	4	38-40	2	269
14. समन्वय एवं सौहार्द के बारे में	5	3, 18	29	46
			31	17-19
15. ब्रह्म को समर्पित हर कार्य करने के बारे में	5	10-11	2	326
16. उचित न्याय के बारे में	5	17, 19-21	3	114
			31	25
			4	124-125
17. पूजा पद्धति के बारे में	6	11-14	39	10
			2	148
18. ब्रह्म या अल्लाह के बारे में	8	3	2	255
19. पुनर्जन्म के बारे में	4	40	2	161-162
	8	25-26		
	9	3		
20. अमरत्व या मोक्ष के बारे में	5, 8	13, 15-16, 21	3	197, 185
21. प्रभु की सर्वव्यापकता एवं सर्वज्ञता के बारे में	10	20	57	3
	13	13		
22. उस अव्यक्त ईश्वर पर ईमान लाने के सन्दर्भ में	12	5	2	2-3
23. दान या खैरात जकात के सन्दर्भ में	17	20-22	2	261-266 तक
24. एकमात्र ब्रह्म ही भजनीय है, के बारे में	18	62, 66	73	8-9
			6	106, 109
			20	14
			39	29

उपर्युक्त विवरणों की पुष्टि हेतु श्रीमद् भगवद्गीता के अध्याय 2 से 18 तक के कतिपय श्लोकों से मिलते-जुलते कुर्आन शरीफ के कतिपय आयात अवलोकनार्थ

आगे उद्धृत किये जा रहे हैं, 'हाथ कंगन को आरसी क्या' आइये स्वयं ही देखा जाये—जिसे देखने के बाद आश्चर्य होता है कि दोनों ग्रन्थों के देश, काल एवं भाषा में किसी भी प्रकार से कोई मेल-जोल नहीं है, किन्तु उपदेशों एवं शिक्षाओं में कितना एकीकरण है, जिससे स्वतः ही सिद्ध होता है कि निस्सन्देह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मालिक बस एक ही अखण्डमण्डलाकार प्रभु है।

गीता और कुर्आन की मिली-जुली शिक्षाएं

सृष्टि उत्पत्ति के बारे में

दोनों धर्म-ग्रन्थों का एक ही मत है जैसा कि गीता में कहा गया है—जितने जानदार प्राणी हैं ये सब शुरू मे अव्यक्त थे यानी उनमें से कोई पैदा नहीं था यानी उस व्यक्त का कोई रंग-रूप नहीं था। बीच के जमाने में ये सब चीजें व्यक्त हुईं और आखिर में ये सब अव्यक्त हो जायेंगी। इसलिए फिक्र करने की कोई बात नहीं।

"अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिवेदना"

—गीता 2-28

इसी तरह कुर्आन में भी कहा गया है कि—हम सब अल्लाह ही के हैं और उसी की तरफ लौटने वाले हैं।

"इन्नालिल्लाहे व इन्ना इलैहे राजउन"

—बकरह 156

मौलाना रूम ने इसी आयत का इस तरह तफ्सीर किया है —

"सूरत अज बे सूरती आमद बिरूं
बाद शुद इन्ना इलैहे राजउन"

यानी सभी सूरतें बेसूरती (निराकार या अव्यक्त) से निकली हैं और फिर उसी अल्लाह (निराकार) में जाकर मिल जाती हैं।

गीता में कहा गया—"वही आदमी ईश्वर तक पहुंच सकता है जो किसी से बैर न रखता हो।"

—अध्याय 11, श्लोक 55

इसी उपदेश को कुर्आन ने अच्छी तरह समझा दिया है—"ऐ ईमान वालो ! अल्लाह के लिए सीधे और इन्साफ से गवाही देने वाले बनो। अगर किसी से तुम्हें

दुश्मनी भी है तो उसकी वजह से किसी के साथ बेइन्साफी मत करो, इन्साफ किया करो, यही बात परहेजगारी (तकवा) से बहुत करीब है। और अल्लाह के हुक्म का हर वक्त ख्याल रखो। सचमुच अल्लाह जानता है कि तुम क्या करते हो।"

—मायदा-8

इसी बात को इस्लाम के पैगम्बर ने भी समझाया है कि—"अगर मोमिन आस्था वाला (ईमान वाला) होना चाहता है तो अपने पड़ोसी का भला कर और अगर मुसलिम होना चाहता है तो जो कुछ अपने लिए अच्छा समझता है वही सब के लिए अच्छा समझ।"

—तिर्मिजी

गीता के भी बिल्कुल वैसे ही मत देखिए—"समझदार आदमी को चाहिए कि बिना अपने किसी तरह के लगाव के सबका भला चाहते हुए सब काम करे।

—3-25

जो आदमी अपनी ही तरह सबको एक बराबर देखता है और सबके सुख-दुःख को अपना ही सुख-दुख समझता है वही सबसे बड़ा योगी है।"

—6-32

कुर्आन पाक ने बताया कि—धर्म या नेकी इसमें नहीं है कि तुमने अपना मुंह (नमाज या पूजा के वक्त) पूरब की ओर कर लिया या पश्चिम की तरफ। धर्म यह है कि आदमी उल्लाह (ब्रह्म) को माने, आखिरत को फरिश्तों को माने, सब मजहबी पुस्तकों और सब नबियों या रसूलों को माने—जो लोग ऐसा करते हैं वही सच्चे परहेजगार हैं।

—सूरत 2-177 आयत

पूरब और पश्चिम दोनों अल्लाह के हैं, इसलिए जिधर भी तुम मुड़ो उधर ही अल्लाह का मुंह है, सचमुच अल्लाह खूब देने वाला और सब कुछ जानने वाला है।"

—सूर : 2-115-आयत

भगवद्गीता के छठे अध्याय के 30वें श्लोक में भी यही बात बताई गई है—"जो मुझे सब जगह और सब में देखता है वह मेरी आंखों से ओझल नहीं होता, न तो मैं उसकी आंखों से ओझल होता हूं। अर्थात् न तो मुझे वह भूलता है और न तो मैं ही उसे भूलता हूं।"

इन्सानियत कायम रखने के लिए इससे बढ़कर और क्या नसीहत हो सकती है। अगर हम कुर्आन पर ईमान रखते हैं, या श्रीमद्भगवद्गीता पर आस्था रखते हैं तो इनकी एक-एक नसीहतों पर अमल करें और जीवन सफल बनायें। यह सारा ब्रह्माण्ड बस एक उसी जगपालक या रब्बुल आलमीन का है। अतः उससे खौफ खाते रहना चाहिए। अपने स्वार्थ के कारण दंगे-फसाद फैलाकर उस प्रभु की सुन्दर सृष्टि को बिगाड़ने की कोशिश नहीं होनी चाहिए। कभी किसी को

अपने से अधम नहीं समझना चाहिए। अगर कोई धन-दौलत में, विद्या वैभव में, बल-बुद्धि में बड़ा है तो वह अल्लाह की मेहरबानी से या ईश्वर की कृपा से है। अतः उसे किसी प्रकार का घमण्ड नहीं होना चाहिए और किसी को भी अपने से छोटा नहीं समझना चाहिए। उसकी महानता बस उसी में है कि वह सबको बराबर समझे। कहा भी गया है—

"विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी—
शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः"

अर्थात् चाहे विद्वान् हो, चाहे विनयवान हो, चाहे कोई उत्तम कुल या उत्तम वर्ण में पैदा हुआ हो, चाहे जानवरों में हाथी या कुत्ते में पैदा हुआ हो, चाहे कुत्ता खाने वाला चाण्डाल ही क्यों न हो—प्रभु में आस्था रखने वाले विद्वान् पण्डित इन सबको समान भाव से ही देखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अधम से अधम लोगों को भी छोटा मत समझो क्योंकि उसे भी हमारे प्रभु ने कुछ मकसद से ही ऐसा बनाया है।

कुर्आन इस मत से अलग नहीं है :—"किसी को छोटा समझ कर उसकी तरफ से अपना मुंह मत फेरो और न ज़मीन पर अकड़ कर चलो, सचमुच अल्लाह किसी घमण्ड करने वाले और डींग हांकने वाले को प्यार नहीं करता।

—सूर : 31, आयत 17 से 19

उक्त नसीहतों पर अमल करके अल्लाह का प्रिय भक्त बनने का प्रयत्न करना चाहिए। जिस प्रभु ने हमें जन्म दिया है और सुखमय जीवन जीने के लिए नाना प्रकार का वैभव हमारे लिए पैदा किया, उसके प्रति पूर्ण आस्था रखनी चाहिए। उसकी बराबरी में किसी को सोचना भी नहीं चाहिए क्योंकि गीता एवं कुर्आन दोनों ने बस उसी एक अखण्ड मण्डलाकार परब्रह्म परमेश्वर की भक्ति पर ज़ोर दिया है।

जैसा कि भगवद्गीता में अठारहवें अध्याय में सबसे रहस्य की बात सर्वगुह्यतम कही गई है। मेरे समझ से यह बस यही है कि—

सिर्फ एक परमेश्वर में ही मन लगाओ, उसी की भक्ति करो, उसी के लिए सब काम करो और उसी के सामने सर को झुकाओ और भी कहा गया है—सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अर्थात् सभी धर्म यानी रीति-रिवाजों, अलग फिरकों को छोड़कर सिर्फ एक परमेश्वर का सहारा लो, सिर्फ यही मोक्ष पाने का तरीका है।

—गीता 18/61, 62, 64, 65,66

इसी तरह कुर्आन शरीफ में भी कहा गया है—"ऐ मुहम्मद! तुम्हारे रब ने तुम पर जो ज्ञान उतारा है तुम उसी पर चलो, यह कि सिवाय उस एक

अल्लाह के दूसरा कोई अल्लाह नहीं है और जो लोग किसी दूसरे की पूजा करते हैं, उन्हें छोड़ो (6-106 से 109) पूरी आयत द्रष्टव्य है।

हमारे वेद शुरू से यही शिक्षा देते आ रहे हैं—

या चिदन्यद् विशसतं सखात्यो या रिषण्य
इन्द्रमित स्तोतावृषण सवासुते युहुरुकधा च शासतं

—अथर्ववेद, 20/85/1

"हे विद्वान् पुरुषो। हे प्रियजनो! व्यर्थ चक्कर में मत पड़ो। परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा को त्याग कर और किसी की स्तुति मत करो। तुम सब मिलकर ऐश्र्यवान तथा सुखवर्धक परमेश्वर की ही बार-बार स्तुति करो।"

ध्यान रहे उसकी स्तुति कभी ओछे दिल से नहीं बल्कि पूरी आस्था से होनी चाहिए, चाहे उसके लिए जितनी भी कुर्बानी देनी पड़े। हमेशा परीक्षा में खरा उतरना चाहिए। स्तुति का तरीका वेदों में बताया भी गया है—

अहेचन त्वाम द्रिव परा शुल्काय देयाम।
न सहंसाय नाचुताय वज्रिवो न शताय शतामध॥

—ऋग्वेद 8/1/5

"हे अविनाशी परमात्मा! बड़े-से-बड़े मूल्य तथा आर्थिक लाभ की वजह से भी मैं तेरा कभी परित्याग न करूं। हे शक्तिशालिन्। हे ऐश्वर्यों के स्वामी! मैं तुझे सहस्त्र के लिए भी न त्यागूं। दस सहस्त्र के लिए भी न वेचूं तथा अपार शक्ति के लिए भी तुझे न छोड़ूं।"

सचमुच में यदि हम अपने इन धर्म-ग्रन्थों में दिये गए उपदेशों पर अमल करके पूरे कायनात (सृष्टि) का बस एक ही मालिक समझ कर, बस उसी की हर तरह से पूजा करें तो ऐसा लगेगा कि सारा ब्रह्माण्ड अपना सहोदर है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पर प्रत्येक का बराबर अधिकार है। हमारे वेदों और उपनिषदों में इसी बात पर विशेष बल देते हुए कहा गया है—

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यांजगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

"इस जगत् में व्याप्त समस्त वस्तुएं (वैभव आदि) ईश्वरमय अर्थात् ईश्वर का ही है, इसलिए इस जगत् में ईश्वर द्वारा ही उत्पन्न किये गये समस्त प्राणी इन ईश्वरमय वस्तुओं के उपभोग के लिए हकदार हैं। इसलिए इन वस्तुओं का उपभोग त्यागपूर्वक ही करना चाहिए। लालच में आकर किसी का हक नहीं छीनना चाहिए।' यह त्याग तभी हो सकता है जब—प्रत्येक व्यक्ति आत्मवत् सर्वभूतानां—समझे।

ऐसी धारणा रखने से सबके प्रति समान स्नेह हो जाएगा। सबमें उसी प्रभु की प्रतिच्छाया मिलती रहेगी। जिसके कारण कोई किसी के विरुद्ध अनधिकार चेष्टा नहीं करेगा। फिर कहां से तेरे-मेरे, मन्दिर-मस्जिद के दंगे होंगे, फिर कहां से अपना-पराया का झगड़ा खड़ा होगा। क्योंकि सबका दिल बड़ा और बराबर नज़र आएगा और बड़े दिल वालों के लिए वेदों मे कहा भी गया है—जो पुनः लिखना यहां उचित-सा लग रहा है—

"अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्,
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।"

"यह मेरा है, यह गैर है, इस तरह की गणना वे लोग करते हैं, जो छोटे दिल के हैं, लेकिन जो लोग बड़े दिल के हैं वे इस ज़मीन में बसने वालों को अपना ही कुटुम्ब मानते हैं" चूंकि मानव क्षुद्र नहीं, अपितु सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसे अपने को पहचानना चाहिए। और भलाई से विश्व को परिपूर्ण कर देना चाहिए क्योंकि वेदों में कहा गया है—

"सुपर्णोऽसि गुरूत्मान पृष्ठे पृथिव्या : सदि।
भासान्तरि क्षमा वृणं ज्योतिषा दिवमुत्तमा न तजसा दिश उद्दहं ।।

—यजु, 17/72

"हे मानव ! तू गौरवशाली ज्ञान और कर्मरूपी सुन्दर पंखों से युक्त है। तू पृथ्वी के ऊपर विराजमान हो अपने प्रकाश और तेज से अन्तरिक्ष को भर दे। अपने तेज से सभी दिशाओं को उन्नत कर दे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवद्गीता के सैकड़ों ऐसे श्लोक हैं जिनका भाव कुर्आन शरीफ के आयतों से मिलता-जुलता है।

अब श्लोकों के अनुसार भी कुछ उदाहरण देखा जाए।

द्वितीय अध्याय

श्लोक सं० 3—जैसे कुर्आन मजीद में भी कहा गया है—"क्योंकि अपनों को देखकर यहां भी मोह हुआ था—"तुम पर लड़ाई (जिहाद) फर्ज किया गया है और वह तुम्हें अप्रिय लगता है। मुमकिन है जो चीज तुम्हें बुरी लगती हो वह तुम्हारे हक में अच्छी हो।"

—बकर : 216

टिप्पणी

मेरी समझ से यह इसलिए कहा गया है कि अगर अत्याचारियों से युद्ध करके उन्हें दबाया न गया तो सारा प्रभुत्व आततायियों का ही हो जाएगा। फिर समाज में धर्म के अभाव में शान्ति नहीं रह जायेगी।

श्लोक सं० 25—जैसे कुर्आन मजीद में भी कहा गया है—आंखें उनको नहीं पा सकतीं······

—परा 7, सूरतुल अनआमि 6, आयत 103

टिप्पणी

इन वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि हर तरह से सिर्फ एक ही परब्रह्म परमेश्वर की ओर इशारा किया गया है, जो वास्तव में सबका मालिक है।

श्लोक सं० 28—जैसे कुर्आन मजीद में है—हम सब अल्लाह के ही हैं और अल्लाह की ओर ही लौट कर जाना है।

श्लोक सं० 37—जैसे कुर्आन मजीद में भी कहा गया है—युद्ध की स्थिति और उद्देश्य दोनों में एक से है—"जो कोई अल्लाह की राह में लड़ता है, वह चाहे मारा जाए, चाहे जीते, अल्लाह से उसे बहुत बड़ा फल मिलेगा।

—पारा, 5, सुरः 4, आयत 74

टिप्पणी

ध्यान रहे, यहां पर मन्दिर-मस्जिद, ईंटें-पत्थर, बालू-मिट्टी के लिए लड़ने को नहीं कहा गया है। बल्कि अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए कहा गया है।

आततायियों से, उग्रवादियों से निरीह बेगुनाह लोगों के लिए लड़ने को कहा गया है। खुलासा के लिए 'कुर्आन मजीद' की इसी सुरः के और आयत देखे जा सकते हैं।

श्लोक सं०46—जैसे सर्वशक्तिमान परब्रह्म यानी अल्लाह की सामर्थ्य की ओर संकेत किया गया है।

श्लोक सं० 59—जैसे 'कुर्आन मजीद' में भी कहा गया है—"ऐ ईमान वालो ! तुम पर रोजे फर्ज किये गए हैं जिस तरह तुझसे पहले के उम्मतों पर फर्ज किए गए थे। इससे उम्मीद है कि तुम परहेजगार बन जाओगे।"

—'कुर्आन मजीद' पारा 2, सुरः 2 (बकरः आयत, 182
यहां रोजे, व्रत का उद्देश्य एक ही है।)

श्लोक सं॰ 69—जैसे कुर्‌आन में देखिये—"उसकी करवटें बिछौने से छूतीं नहीं ? अपने प्रभु को भय एवं आशा के साथ पुकारते रहते हैं।"

—सुर: 32, आयत 16

तृतीय अध्याय

नोट : सं॰ 1

श्लोक सं॰ 6—जैसे इस लोक में मन से बुरा सोचने वालों को पापी (गुनहगार) कहा गया है, जिन्हें सजा ज़रूर मिलेगी।

—देखिए, कुर्‌आन शरीफ सुर: निसाइ

नोट : सं॰ 2

श्लोक सं॰ 12-13—जैसे कुर्‌आन में भी कहा गया है—"यदि ईश्वर के संकेतों पर तुम श्रद्धा रखते हो, तो जिस अन्न पर ईश्वर का नाम स्मरण किया गया हो, उसमें से खाओ...। और उसमें से न खाओ, जिस पर ईश्वर नाम का स्मरण न किया गया हो क्योंकि ऐसा करना आज्ञा-भंग है...।"

—कु॰ श॰ सुर: 6, आयत 118-121

नोट : सं॰ 3

श्लोक सं 16—जैसे पूर्व रीति की ओर कुर्‌आन शरीफ में भी इशारा किया गया है—"मैं कोई नयी बात नहीं कह रहा हूं। बल्कि पहले कही हुई बातों को ही दुहराया जा रहा है।"

—कुर्‌आन शरीफ सुर: हामीम, आयत सं॰ 43

नोट : सं॰ 4

श्लोक सं॰ 26—जैसे बात कुर्‌आन शरीफ में भी कही गयी है—"और लोग अल्लाह के सिवाय जिनको भी पूजते हैं उनको तुम लोग बुरा न कहो। क्योंकि वे लोग अज्ञानंता (नासमझी) के कारण—अल्लाह (ब्रह्म) को ही बुरा कहकर अनादर करने लगेंगे।"

'जाहिर हैं, यदि हम किसी को बुरा कहेंगे तो वह भी जरूर मुझे बुरा कहेगा।

—पारा 6, सुर: 6, आयत सं॰ 102

नोट : सं० 5

श्लोक सं० 31—जैसे कुर्‌आन शरीफ में कहा गया है—"हां, सच बात तो यह है कि जिसने अपने को (भक्तिपूर्वक) अल्लाह को सौंप दिया और सत्कर्मी हो गये उसके लिए उसके पालनकर्ता से अच्छा बदला मिलेगा।" अर्थात् वे ही जन्नती होंगे।

—पारा 1, सुर : 2, आयत 112

श्लोक सं० 32—जैसे देखिए "और जब अल्लाह ने किताब वालों से वचन लिया कि लोगों से इसका मतलब सही बयान करना और (इसकी किसी भी बात को) छिपाना नहीं, तो उन्होंने उस वचन को अपनी पीठ के पीछे फेंक दिया—ख्याल न करना कि वे अजाब से बचे रहेंगे। उनके लिए बहुत ही दुखदायी सजा है।"

—पारा 4, सुरः 3, आयत सं० 187-188

चतुर्थ अध्याय

नोट : 1

श्लोक सं० 5 **एवं** 7—यहां ऐसी दशा में बार-बार पैगम्बर भेजने की बात कुर्‌आन शरीफ में आती है। क्योंकि ब्रह्म ने तो अपने आपको नित्य अजन्मा कहकर अपना परिचय दिलवाया है।

—देखें, कुर्‌आन शरीफ पारा-17, सुरः आयत, 7,8,9

नोट : 2

श्लोक सं० 11—जैसे कुर्‌आन में भी आया है—वही ईश्वर है, कर्त्ता-भर्त्ता स्वरूपदाता, सारे सुन्दर नाम उसी के लिए हैं। आकाशों में और भूमि में जो है, वे सब उसी का जप करते हैं, जय-जयकार करते हैं और वही सर्वजित्, सर्वविद् है।

—कुर्‌आन सार, खण्ड-8, कुर्‌आन-पारा 28, सुरः 59, आ० सं० 20-28

नोट : 3

श्लोक सं० 31—जैसे कुर्‌आन शरीफ में भी कहा गया है—यदि ईश्वर के संकेतों पर तुम श्रद्धा रखते हो, तो जिस अन्न पर ईश्वर का नाम स्मरण किया

गया हो उसमें से खाओ—और उसमें से मत खाओ जिसमें ईश्वर का नाम स्मरण न किया गया हो, क्योंकि ऐसा करना आज्ञा-भंग है।

—सुर : 6, आयत-118-119

नोट : 4

श्लोक सं० 39-40—में ज्ञानी भक्तों को भगवान् कृष्ण ने सबसे उत्तम भक्त कहा है—ज्ञानी वही है जो ज्ञान से अच्छी तरह परख कर ईश्वर को ही ईश्वर समझे और सिर्फ उसी के प्रति अपनी श्रद्धा रखे। जितेन्द्रिय वही है जो किसी भी प्रकार के लालच में इन्द्रियों को नहीं पड़ने दे। ईश्वरीय ग्रंथों ने जिसे मना किया, उसके प्रति कदापि लालच न करे और जो कहा उससे कभी आलस न करे। संशय वाला वह है जो हमेशा भटकता ही रहे अर्थात् जैसे किसी ने कहा कि फलां देव ही सृष्टि के रचयिता हैं—तो आंख बन्द करके उन्हीं देव की उपासना में लग गये, फिर किसी ने यदि कहा कि फलां तो उससे बड़े बलवान थे जिन्होंने सबकी मदद की है। बस पहले वाले की पूजा छोड़कर दूसरे की पूजा करने लगे और उन्हें ही सब कुछ मानने लगे। फिर किसी ने यदि कहा कि फलां तो इन दोनों से भी शक्तिशाली थे। फिर क्या कहने, उन दोनों को छोड़-छाड़ तीसरे की उपासना में लग गए। फिर यदि किसी ने कहा कि इन सबसे शक्तिशाली तो वो है जो 'सबकी मां है'। लीजिए साहब, अब उन सबको भी छोड़े और काल्पनिक मां की उपासना में जी-जान लगा दिए। नतीजा यह हुआ कि किसी के प्रति भी आस्था नहीं जम सकी। ऐसा संशय वाला व्यक्ति अपने दोनों लोक गवां देता है। यही लोग पुनर्जन्म के दलदल में भी फंस जाते हैं।

इसीलिए कहा गया है—

एके साधे सब सधे सब साधे सब जाए।
रहिमन मूलहि सींचिए फूले फले अघाए।।

—'भक्त कवि, रहीम दास'

भक्त कवि तुलसीदास ने भी कहा—

"एक भरोसो एक बल एक आस विश्वास।"

पंचम अध्याय

नोट :

श्लोक सं० 3—जैसे कुर्आन शरीफ में भी द्वेष और वैमनस्य को दूर करने के लिए कहा गया है, "ग्रंथवानों से केवल इस रीति से चर्चा करो, जो सौजन्य पूर्ण हो—(उन लोगों को छोड़कर जो अत्याचारी हैं) और कहो—जो ग्रंथ हम पर उतरा और जो तुम पर उतरा उन पर हम श्रद्धा रखते हैं और हमारा भजनीय एवं तुम्हारा एक ही है और हम उसी की शरण में हैं।"

—कुर्आन शरीफ सुर: 29, आयत 46

श्लोक स० 10-11—(1) जैसा कि तीसरे अध्याय में बताया जा चुका है : जो हर कर्म करने से पहले कहने का आदेश है। 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' अर्थात् शुरू करता हूं अपना काम उस अल्लाह (ब्रह्म) का नाम लेकर जो अत्यन्त कृपालु एवं दयालु है। (2) हर हाल में वही कर्म करना चाहिए जो ईश्वरीय ग्रंथों के द्वारा निर्देश दिए गए हैं।

श्लोक संख्या 17—जैसा कुर्आन शरीफ में भी कहा गया है।

"और जो शख्स कोई नेक काम करे—मर्द हो या औरत, और वह ईमान रखता हो तो ऐसे लोग जन्नत में दाखिल होंगे और ज़रा भी उनका हक न मारा जायेगा। और उस शख्स से जियादा किसकी राह अच्छी है।"

—कुर्आन

श्लोक सं० 19—जैसे देखिए—"जिसने अल्लाह (ब्रह्म) के आगे अपना सिर झुका दिया, वही नेककार भी है।"

—पारा-5 सूरतुन्निसाइ 4, आयत-124-125

श्लोक सं० 20-21—कुर्आन शरीफ में देखिए—1-2-3—मेरे श्रद्धावान दासो ! ईश्वर परायणता धारण करो। जो लोग इस जगत् में भलाई करते हैं, उनके लिए अच्छा प्रतिफल है और ईश्वर की भूमि विशाल है, तितिक्षा करने वालों को ही उनका अगणित प्रतिफल मिलता है।

—सुर: 39, आयत-10

श्लोक सं० 29—जैसे कुर्आन शरीफ में भी अल्लाह को 'अलहम्दो लिल्लाहिरब्बुल आलमीन अर्रहमानिर्रहीम' कहा गया है—अर्थात् सारी खूबियां सिर्फ अल्लाह की ही हैं, और अल्लाह ही पूरे ब्रह्माण्ड का मालिक और पालक है—जो वेपनाह दयालु और कृपालु है।"

—कुर्आन शरीफ पारा-1, सुर : 1, आयत 1 से 7

षष्ठ अध्याय

नोट

श्लोक संख्या 11, 12, 13, 14—हर धर्म में अलग-अलग पूजा पद्धति है। इसके लिए कुर्आन शरीफ में कहा भी गया है—"हर आदमी की अपनी दिशा है, जिस तरफ वह पूजा (इबादत) के वक्त मुंह कर लेता है। इसलिए इस बहस में मत पड़ो और भलाई के कामों में एक-दूसरे से बढ़ने की कोशिश करो, तुम कहीं भी होगे, अल्लाह तुम सबको मिला देगा, सचमुच अल्लाह हर चीज़ में समर्थ है।

—कुर्आन शरीफ—सुर: बकर आयत सं० 148

श्लोक संख्या 21, 22—इन श्लोकों में ईश्वर के प्रति अटूट आस्था की बात कही गयी है। ऐसे आस्थावान व्यक्ति को ही इस्लाम की भाषा में 'मुसलमान' या 'मोमिन' कहा जाता है। इस कथन की पुष्टि के लिए 'इस्लाम प्रवेशिका' पढ़ा जाय। यही बात वेदों में भी कही गयी है। इसी किताब की भूमिका का अन्तिम भाग देखें।

श्लोक संख्या 29, 30, 31—कुर्आन शरीफ में कई जगह बात दुहराई गयी है—

'इन्तल्लाह युहिब्बल मुहसनीन'

यानी सचमुच अल्लाह उन्हीं को प्यार करता है जो दूसरों को अपने जैसा ही समझकर उसके साथ नेकी करते हैं।

श्लोक संख्या, 35—इसी प्रक्रिया को दृढ़ करने के लिए इस्लाम धर्म में पांच बार की नमाज फर्ज की गयी है, जिसे किसी भी हालत में छोड़ना नहीं है। ताकि खुदा को याद करने का अभ्यास निरन्तर बना रहे और हर फरियाद उनके सामने पेश होता रहे।

श्लोक संख्या 40 के अनुसार—कुछ नास्तिक लोग, लोक-परलोक न मानकर 'सब कुछ यहीं है' ऐसा कहते हैं। लेकिन जैसा कि भगवान् कृष्ण ने लोक-परलोक की बात कही—इस्लाम ने इसका भरपूर समर्थन किया है।

श्लोक संख्या 41, 42, 43—यहां बताया गया है कि पूर्व जन्म होते हैं और पिछले जन्म के कृत कार्य दूसरे जन्म में जुटते हैं। आठवें अध्याय में बताया गया है कि पुनर्जन्म क्यों होते हैं और कैसे इससे मुक्ति मिल सकती है। इसी मुक्ति मार्ग को इस्लाम में अपनाया गया है इसलिए पूर्व जन्म को नहीं माना जाता।

श्लोक संख्या 47—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कि भगवान् कृष्ण ने फनाफिल्लाह अर्थात् ब्रह्ममय होकर गीता का उपदेश दिया है। इसीलिए उनके

स्वयं के तरफ का संकेत ब्रह्म की तरफ किया गया है। जैसा कि यहां बताया गया है कि ब्रह्मोपासक का पुनर्जन्म नहीं होता। इसी कथन का समर्थन करते हुए इस्लाम धर्म में सीधे एकमात्र ब्रह्म की उपासना पर ही जोर दिया गया है। इसलिए पुनर्जन्म का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

सप्तम अध्याय

नोट :

श्लोक संख्या 9—कुर्आन में अल्लाह् को 'नुरून अलानूर' यानी रोशनी का रोशनी कहा गया है, और 'नूरुस्समावाते वल अर्दे' यानी अल्लाह् को आसमानो-ज़मीन की रोशनी कहा गया है।

—पारा-18, सुर: 24, आयत 35

इससे सिद्ध होता है कि एक ब्रह्म ने पूरे ब्रह्माण्ड को रोशन किया हुआ है।

श्लोक संख्या 15—कुर्आन मजीद में भी यही बात कही गयी है—

"ऐसे जालिमों पर अल्लाह् की लानत है।" जो अल्लाह के रास्ते से रोकते और उसमें नुक्स ढूंढ़ते और आखिरत के दिन से इनकार रखते थे।

—पारा-8, सुर: 7, पारा-43-44

श्लोक संख्या 17—कुर्आन शरीफ में भी 'वह्दहु ला शरीक लहू' कहा गया है—यानी बस एक ही अल्लाह् इबादत के लायक है। उसके साथ किसी को शरीक नहीं किया जा सकता। इस्लाम की बुनियाद बस उसी वाहिद अल्लाह् के आधार पर कायम है।

अष्टम अध्याय

टिप्पणी : 1

श्लोक संख्या 5, 6, 10—सम्भवतः इसी धारणा से इस्लाम में पांच वक्त की नमाज ज़रूरी की गयी है, ताकि हर पल अल्लाह की याद दिलो-दिमाग पर ही छायी रहे और मरते वक्त सिर्फ वही याद आए। इस पूरे आध्याय में बस

इसी अभ्यास की चेतावनी दी गयी है और मोक्ष प्राप्त करने का यही नियम भी है।

टिप्पणी : 2

श्लोक संख्या 3—जैसे कुर्आन मजीद में भी यही बात कही गयी है—"यही अल्लाह (ब्रह्म) तुम्हारा परवरदिगार है, उसके सिवा कोई बन्दगी के लायक नहीं है और सब चीजों को पैदा करने वाला है, तो उसी की इबादत करो और उसी पर हर चीज का भार है।"

—पारा-7, सूरतुलअन्अमि-6, आयत-101

भावार्थ पर ध्यान दिया जाए तो दोनों बातें एक ही लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं।

टिप्पणी : 3

श्लोक संख्या 25, 26 की तरह ही कुर्आन शरीफ में भी यही बात कही गयी है—

"बेशक जो लोग (ब्रह्म के ब्रह्मत्व से) इनकार करते रहे और इनकारी की ही हालत में मर गए, यही हैं जिन पर अल्लाह की और फरिश्तों की और आदमिय़ों की लानत है। वह हमेशा इसी (हालत) में रहेंगे, इनकी न तो सजा ही हल्की की जाएगी और न इनको मुहलत ही मिलेगी।

—कु० स० सूर: 2/161-162

अज्ञानियों, अधर्मियों, नस्तिकों और आततायियों के लिए यही दुर्दशा लगभग सभी शास्त्रों में बताई गयी है।

नवम अध्याय

टिप्पणी

श्लोक संख्या 3, 4 के अनुसार कुर्आन के मुताबिक काफिरों और मुनाफिक लोगों की ओर संकेत है, जिन्हें उनके किए की सजा ज़रूर मिलती है।

2. कुर्आन शरीफ के पहले सुर: में कहा गया है—'अलहम्दो लिल्लाहिर्रब्बिल

आलमीन'—सारे ब्रह्माण्ड का मालिक अल्लाह ही है और सभी खूबियां उसकी ही हैं।

—सुर : फातिहा

श्लोक संख्या 25—शुद्ध ब्रह्म की उपासना का ही संकेत है। बस यही सन्देश इस्लाम में भी है।

श्लोक संख्या 27—जैसा कि पहले कहा जा चुका है—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' हर कर्मों में कहना चाहिए। इसी तरह—हर काम शुरु करने से पहले 'बिस्मिलाहिर्रहमानिर्रहीम' कहने का निर्देश इस्लाम में दिया गया है।

दशम अध्याय

टिप्पणी : 1

श्लोक संख्या 10-11—इसी बात को कुर्आन ने भी कहा है—

"ईमान वालों का मददगार अल्लाह है कि उन्हें अंधेरे से निकालकर रोशनी में लाता है।" इसके अतिरिक्त—पारा-21, सुर : 30, आयत-69 भी देखें। यानी वही एक प्रभु है जो अपने नेक बन्दों के लिए हर तरह से मददगार है।

टिप्पणी : 2

श्लोक संख्या 20—कुर्आन मजीद में अल्लाह के लिए भी आया है—"वही आदि और वही अन्त है। वही जाहिर और सर्वव्यापी है। वही सर्वज्ञ (भी) है।"

—पारा-27, सूरतुत्हदीदि-57, आयत-3

टिप्पणी : 3

श्लोक संख्या 33—कुर्आन में अल्लाह के लिए यही कहा गया है—"जिधर को भी तुम मुड़ो उधर ही अल्लाह का मुंह है।"

—पारा-1, सुर : बकर-2, आयत-115

टिप्पणी : 4

श्लोक संख्या 40—(1). प्रकृति में फैली हुई मनोरम छवि जलचर, थलचर, नभचर आदि नाना प्रकार के जीव अद्भुत-से-अद्भुत वैभव या भयावह से भयावह

जो वस्तुएं संसार में दिखायी देती हैं यह तो एक नमूना मात्र है। लेकिन हम अज्ञानता के कारण—सब कुछ (स्वर्ग नरक) यहीं है, ऐसा मान लेते हैं। इस संसार से ऊपर कुछ मानते ही नहीं। परिणाम यह होता है कि इससे भी लाखों गुना बढ़कर मनोरम छटा युक्त स्वर्ग की लालसा में समाज के नेक कार्यों में प्रवृत्त नहीं हो पाते। या इनसे भयावह वस्तुओं से लाखों गुना भयंकर नरक के भय से बुरे कर्मों को नहीं छोड़ते जबकि एक हदीस में कहा भी गया है—"जन्नत में एक चाबुक के बराबर जगह भी दुनिया और जो कुछ उसमें है उससे कहीं बेहतर है।"

मेरी समझ से अपने देश का उत्तमोत्तम नागरिक बनने के लिए स्वर्ग की लालसा और नरक का भय अवश्य होना चाहिए।

जैसा कि अध्याय 7-9-10 में कहा गया है कि हर उत्तम वस्तु में सर्वोत्तम मैं ही हूं, ठीक इसी तरह कुर्आन के पहले सुरः में ही कहा गया 'अल्लहम्दो लिल्लाह' यानी पूरे ब्रह्माण्ड में जितनी खूबियां और प्रशंसित वस्तुएं हैं सब अल्लाह की ही हैं।

एकादश अध्याय

नोट

श्लोक संख्या 12—पैगम्बर मूसा अलैहिस्सलाम को भी ऐसे ही अवर्णनीय तेज का दर्शन हुआ था।

—देखिये कुर्आन शरीफ—सुरह इसरायल

कुर्आन में खुदा को नूर का भी नूर कहा गया है। जैसा पहले बताया जा चुका है।

श्लोक संख्या 55—यहां भी कुर्आन मजीद की वही बात दुहराई जा सकती है—'इन्मल्लाह युहिब्बल मुहसनीनी' यानी सचमुच अल्लाह उन्हीं को प्यार करता है जो दूसरों के साथ नेकी करते हैं। यानी जो किसी से द्वेष नहीं करते। इसके अतिरिक्त उक्त श्लोक की बात—सुरः अनआम आयत-152 से 154, सुरः मायदा-आयत-8, सुरः वलद-आयत-10-20, सुरः ततफीफ-आयत-1-3, सुरः तुन्निसा-36, सुरः माऊन-1-7, सुरः नहल-126 से 128 में देखा जा सकता है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि उक्त आयतें हर इन्सान के पढ़ने, समझने और नसीहत लेने लायक हैं। इसी तरह बारहवें अध्याय में लगभग हर श्लोक में यही नसीहत है।

द्वादश अध्याय

नोट

श्लोक संख्या 5—कुर्आन शरीफ में भी एकमात्र बस उसी अव्यक्त पर ही ईमान लाने की बात कही गयी है।

यह पुस्तक है, कुछ भी सन्देह नहीं है, इसमें पथ-प्रदर्शन है (अल्लाह का) डर रखने वालों को। और जो अव्यक्त पर ईमान रखते हैं और नमाज कायम करते हैं और हमने जो कुछ दे रखा है, उसमें से खुदा के राह में खर्च करते हैं।

—कुर्आन शरीफ पारा-1, सुर :2, आयत-2,3,

श्लोक संख्या 17-18 के अनुसार ही इस्लाम में सूफी सन्तों ने इसी पद्धति को अपनाया है।

त्रयोदश अध्याय

नोट

श्लोक संख्या 13—कुर्आन शरीफ में लगभग सभी सुर: में अल्लाह के लिए सर्वज्ञ एवं सर्वव्याप्त कहा गया है।

श्लोक संख्या 17—कुर्आन शरीफ में खुदा को भी कहा गया है—

"नूरून अलानूर और नूरूस्समावाते वल अर्दे"

अर्थात्—'ज्योति की भी ज्योति' और आसमानो-ज़मीन का प्रकाश वही है।

—सुर: नूर-आयत-35

चतुर्दश अध्याय

(1) **श्लोक संख्या** 1-2 : इन श्लोकों में जिस ज्ञान की चर्चा है, इसके लिए कुर्आन शरीफ का पूरा सुर: रहमान पढ़ने और समझने लायक है। फिर भी इनमें से कुछ आयत इस प्रकार हैं—और यही सर्वोत्तम ज्ञान है—"उस रहमान ने ही

कुर्‌आन सिखाया। आदमी को पैदा किया, फिर उसको बोलना सिखाया। सूरज और चांद एक हिसाब से (चक्कर लगा रहे) हैं, और वनस्पतियां दरख्त उसी को सिजदे कर रहे हैं। और आसमान को ऊंचा किया और तराजू कायम की, कि तुम लोग तराजू में कम-वेश न करो और न्याय के साथ सीधी तौल तौलो और कम न तौलो। और सृष्टि के लिए ज़मीन विछा दी, कि उसमें मेवे हैं और खजूर के पेड़ हैं जिनके मेवों पर (कुदरती) गिलाफ चढ़े होते हैं। और अनाज जिसके साथ भुस है और खुशबूदार फूल हैं। फिर तुम दोनों अपने परवरदिगार की कौन-कौन-सी नियामतों को झुठलाओगे।"

—सुर: रहमान आयत संख्या—(1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13)

"तुम्हारे परवरदिगार का नाम बड़ा बरकत वाला, वेहद बड़ाई वाला और बड़ा एहसान करने वाला है।"

—सुर: रहमान, आयत संख्या—78

(2) **श्लोक संख्या**-9 की तरह कुर्‌आन शरीफ में भी कहा गया है—"जो किताब कुर्‌आन तुम पर उतारी गई है और जो तुमसे पहले उतारी गई है उनको जो मानते हैं और अन्तिम न्याय पर विश्वास करते हैं—यही लोग अपने परवरदिगार की ओर से (निश्चित) सही राह पर हैं और यही सफल हैं। बेशक जिन लोगों ने इनकार अपनाया है, तुम उनको डराओ या न डराओ उनके लिए बराबर है, वे ईमान नहीं लायेंगे। उनके दिलों पर और कानों पर अल्लाह ने मुहर लगा दी है और उनकी आंखों पर पर्दा है। और उनके लिए बड़ी सजा है।"

—सुर: बकर—4, 5, 6, 7

(3) **श्लोक संख्या**-11 की तरह कुर्‌आन शरीफ में भी कहा गया है—"लोगो! अपने पालनहार की भक्ति करो, जिसने तुमको और उन लोगों को जो तुमसे पहले गुज़रे हैं पैदा किया, अजब नहीं तुम संयमी बन जाओगे।"

—सुर: बकर, आयत संख्या-21

(4) **श्लोक संख्या**-14 की तरह कुर्‌आन शरीफ में भी कहा गया है—"जो लोग ईमान लाये और जिन्होंने अच्छे काम किये, उनको खुशखबरी सुना दो कि उनके लिए (बहिश्त के) बाग हैं, जिनमें नहरें बह रही हैं। जब उनमें का कोई मेवा खाने को दिया जाएगा तो कह उठेंगे, यह तो वही है जो हमको पहले मिल चुका है, और उनको सचमुच मिलते-जुलते मेवे मिला करेंगे। और वहां उनके लिए बीवियां पाक-साफ होंगी और वह उनमें सदैव रहेंगे।"

—सुर: बकर, आयत संख्या-25

(5) **श्लोक संख्या**-26 की तरह कुर्‌आन शरीफ में भी कहा गया है—"सब्र और नमाज के जरिए अल्लाह से मदद लो। बेशक यह कठिन काम है, मगर उन

पर नहीं जिनके दिलों पर डर है, जिनकी यह निश्चय धारणा है कि उनको अपने पालनकर्त्ता से मिलना है और उसी की तरफ लौट जाना है।"

—सुर: बकर, आयत संख्या—45, 46

पंचदश अध्याय

टिप्पणी

श्लोक संख्या 6 में जन्नत का हवाला है—कुर्‌आन के अनुसार हर नेक काम करने वालों को जन्नत में ही दाखिल करने का वायदा खुदा की ओर से किया गया है, जिस पर हमारा ईमान है।

श्लोक संख्या 12 में जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि कुर्‌आन में अल्लाह को इसी तरह—'नूरूस्समावाते वल अर्द' यानी आसमानो-ज़मीन का प्रकाश कहा गया है। साथ ही सूर्य चन्द्र सहित सारी कायनात का मालिक भी कहा गया है।

षोडश अध्याय

टिप्पणी

श्लोक संख्या 8 के अनुसार कुर्‌आन शरीफ में भी दुष्ट अभक्त लोगों की मनगढ़न्त कल्पना के बारे में आया है—"और वे कहते हैं हमारे इस ऐहिक जीवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हम मरते हैं और जीते हैं और काल के बिना हमें कोई नहीं मारता।"

—कुर्‌शान शरीफ—सुर: 45, आयत 2

इस अध्याय में जो नरकगामी दुष्टों की परिभाषा बताई गयी है ठीक यही परिभाषा कुर्‌आन शरीफ में काफिरों और मुनाफिक लोगों की भी है। जिसे पूरे कुर्‌आन शरीफ में यत्र-तत्र देखा जा सकता है। ऐसे लोगों को ही खुदा कड़ी से कड़ी सजा देबे वाला है, जैसा कि कुर्‌आन में कहा जा चुका है।

सप्तदश अध्याय

टिप्पणी

श्लोक संख्या 5-6 का आशय—कुर्आन शरीफ में ऐसा कहा गया है—"परमात्मा चाहता है कि तुम पर ध्यान दे और वासना के अनुगामी चाहते हैं कि तुम सत्य मार्ग से बहुत दूर जा पड़ो।"

—कुर्आन शरीफ, सुरः 4, आयत 27

श्लोक संख्या 20, 21, 22 में जो कहा गया है ठीक वैसे ही कुर्आन शरीफ में भी दान का विशेष महत्त्व बताया गया है और दान के सन्दर्भ में बिल्कुल यही बात दुहराई गयी है—यथा—

1. "जो लोग अपना धन ईश्वर के मार्ग में खर्च करते हैं उनका उदाहरण ऐसा है जैसे एक दाने की, उसमें सात बालें होंगी। हर बाल में सौ दाने। ईश्वर जिसके लिए चाहता है वृद्धि करता है। ईश्वर सर्व व्यापक, सर्वज्ञ है।

2. जो लोग अपना धन ईश्वर के नाम पर व्यय करते हैं और व्यय करके न उपकार जताते हैं और न कष्ट पहुंचाते हैं—उनके लिए उनका पारिश्रमिक उनके प्रभु के यहां है और उनको न डर है और न वे दुःखी होंगे।

3. हे श्रद्धावानो! अपने दान-उपकार को जताकर या पीड़ा पहुंचाकर नष्ट न करो। उस व्यक्ति की भांति, जो अपना धन ईश्वर के मार्ग में केवल दिखलाने के लिए व्यय करता है और ईश्वर एवं अन्तिम दिन पर श्रद्धा नहीं रखता। तो उसका उदाहरण ऐसे है कि एक चट्टान, जिस पर कुछ मिट्टी पड़ी है, फिर उस पर ज़ोर की वर्षा हुई, तो उसने उस पत्थर को स्वच्छ कर दिया। ऐसे लोगों को उनका कमाया हुआ कुछ भी हाथ नहीं लगता और ईश्वर श्रद्धाहीनों को मार्ग भी नहीं दिखाता।

—इस सन्दर्भ में कुर्आन शरीफ का—सुरः 2,
आयत संख्या—261 से 266 तक पूरा देखा जाये

अष्टादश अध्याय

टिप्पणी

1. इस अध्याय में श्लोक संख्या 4 से 9 तक जो उपदेश हैं। यही बात कुर्आन शरीफ में ऐसे कही गयी है—"तो कुछ लोग ऐसे हैं, जो स्वयं पर अत्याचार करने

वाले हैं और कुछ उनमें से मध्यम गति वाले हैं, और कुछ उनमें ईश्वर की सत्कृतियों में सबसे आगे बढ़ जाने वाले हैं। यही महान् सौभाग्य है।''

—कुर्आन शरीफ, सुर: 35, आयत 32

2. श्लोक संख्या 45-46 का कथन कुर्आन शरीफ में भी मिलता है यथा—''निस्सन्देह ईश्वर कर्म परायण व्यक्ति स्वर्ग के उद्यानों एवं निर्झरों में निवास करेंगे।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 51, आयत 16

3. श्लोक संख्या 51-52-53 का भाव कुर्आन में इस प्रकार व्यक्त किया है यथा—''परलोक का वह घर हम उन लोगों के लिए नियत करते हैं, जो धरती पर न बड़ा बनने का विचार करते हैं, न कलह करने का। और ईश्वर परायणों के लिए (ही) सद्गति है।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 28, आयत 83

4. श्लोक संख्या 56-57 का भाव कुर्आन शरीफ में इस प्रकार है—''जो कोई अपना हेतु ईश्वर के अधीन करे और वह सत्कृतिवान् हो, तो निस्सन्देह उसने मजबूत रस्सी पकड़ ली। ईश्वर के अधीन प्रत्येक कार्य की पूर्ति है।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 31, आयत 22

5. श्लोक संख्या 58 का भाव कुर्आन शरीफ में इस प्रकार है—''...और हमने श्रद्धाहीनों के लिए लज्जास्पद दण्ड तैयार कर रखा है।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 4, आयत 151

6. श्लोक संख्या 62 का भाव कुर्आन शरीफ में इस प्रकार है—''(1) अपने प्रभु का नाम लेता रह और एकाग्र होकर उसी की ओर प्रवृत्त हो।'' (2) वह पूर्व एवं पश्चिम का स्वामी है उसके अतिरिक्त कोई भजनीय नहीं। सो उसी को सार-संभाल करने वाला बना ले।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 73, आयत 8-9

7. श्लोक संख्या 66 का भाव ही इस्लाम धर्म का आधार माना गया है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कई महत्त्वपूर्ण आयत उल्लेखनीय हैं जो इस प्रकार हैं—

(1) ''ऐ मुहम्मद ! तुम्हारे रब्ब ने तुम पर जो ज्ञान उतारा है तुम उसी पर चलो, यह कि सिवाय उस एक अल्लाह (ब्रह्म) के दूसरा कोई अल्लाह नहीं है और जो लोग किसी दूसरे की पूजा करते हैं उन्हें छोड़ो।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 5, आयत 106 से 109 पूरी आयत द्रष्टव्य है

(2) निस्सन्देह मैं जो हूं, परमात्मा हूं। मेरे सिवा अन्य कोई भजनीय नहीं। सो मेरी ही भक्ति कर तथा मेरे स्मरण के लिए नित्य नियमित प्रार्थना कर।''

—कुर्आन शरीफ सुर: 30, आयत 14

सच भी है कि बस वह अखण्ड मण्डलाकार परब्रह्म परमेश्वर ही एकमात्र भजनीय है और उसी को अपना मालिक समझना कथन के समर्थन में कुर्आन शरीफ में एक दृष्टान्त भी दिया गया है जो इस प्रकार है—"परमात्मा ने एक दृष्टान्त दिया कि एक मनुष्य है, जिसके कई झगड़ालू मालिक हैं और एक (दूसरे) मनुष्य पूरा एक का ही (गुलाम) है। क्या दोनों की हालत एक जैसी हो सकती है? सारी स्तुति परमात्मा के लिए है, किन्तु बहुत से लोग समझते नहीं।"

—कुर्आन शरीफ सुर: 39, आयत 29

8. श्लोक संख्या 67 की भांति कुर्आन में तो यहां तक कहा गया है कि—"जो कोई ईश्वर के स्मरण से मुंह मोड़ता है उसके लिए हम एक शैतान नियुक्त कर देते हैं, सो वही उसका साथी होता है।"

—कुर्आन शरीफ सुर: 43, आयत 30

उक्त 'आयत' का आशय है कि ऐसे काफिर नास्तिक लोगों को कभी भी सही रास्ता, ईश्वरीय ज्ञान नहीं मिल पाता और अन्त में वह घोर नरक में ही जाता है।

9. श्लोक संख्या 68-69-70-71 का भाव कुर्आन शरीफ में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—"क्यों नहीं? जिसने अपना व्यक्तित्व ईश्वर को सौंप दिया और वह सत्क्तवान है, तो उसके लिए उसका प्रतिफल उसके प्रभु के पास है उनको कोई भय नहीं, और न वे दुःखी होंगे।"

—कुर्आन शरीफ सुर: 2, आयत 112

विशेष क्या लिखा जाए सहिष्णु, सहृदय एवं समझदारों के लिए इशारा ही काफी है। अब आवश्यकता इस बात की है कि इन पवित्र ग्रन्थों को श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाए और इनकी उत्तमोत्तम शिक्षाओं, उपदेशों को आत्मसात करते हुए हम सब मिलकर—अपने आपके लिए, अपने घर, गांव, समाज एवं राष्ट्र के लिए उत्तमोत्तम नागरिक बनने का अनवरत प्रयास और वेदों में उच्चरित 'वसुधैवकुटुम्बकं' जैसे नारे को चरितार्थ किया जाए।

बस इसी लालच से धार्मिक एकता एवं सद्भाव को ध्यान में रखते हुए श्रीमद् भगवद्गीता का हिन्दी पद्यानुवाद आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूं।

खण्ड-ख

श्रीगीता का हिन्दी पद्यानुवाद

अनुक्रम

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

प्रथमोऽध्यायः
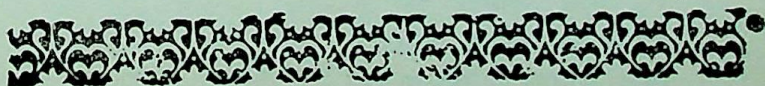
प्रथमोऽध्यायः

अर्जुन-विषाद योगः

धृतराष्ट्र उवाच

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

संजय उवाच

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

प्रथम अध्याय

अर्जुन-विषाद योग

[अध्याय के अन्त में नोट अवश्य पढ़ें]

धृतराष्ट्र बोले

कुरुक्षेत्र जो धर्मक्षेत्र है,
सभी उसी मैदान जुटे।
तनय हमारे पाण्डव जन सब,
युद्ध हेतु ललकार किए

दोनों दल ने कुरुक्षेत्र में,
कर्म क्या किया बतलाएं।
औ' फिर किसकी शान रह गई,
हे संजय! सब समझाएं ॥१॥

संजय बोला

पाण्डव जन के सजे सिपाही,
जब दुर्योधन ने देखा।
तभी द्रोण के समीप जाकर,
गुरुवर से यह वचन कहा ॥२॥

हे गुरुवर निज शिष्य देखिए,
हैं जो प्रज्ञावान प्रबल।
धृष्टद्युम्न के द्वारा ही ये,
सजे पाण्डवों के दल-बल ॥३॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः॥४॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः॥५॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः॥६॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते॥७॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥८॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणा सर्वे युद्धविशारदाः॥९॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥१०॥

देखें अर्जुन भीम यहां पर,
जो अति वीर धनुर्धर हैं।
है विराट और युयुधान औ'
राजा द्रुपद धुरन्धर हैं ॥४॥

पुरुजित् कुन्तिभोज नरपुंगव,
शैव्य और चेकितान यहीं।
धृष्टकेतु काशी नरेश हैं,
बड़े-बड़े बलवान यहीं ॥५॥

वीर सुभद्रा लाल यहां पर,
युधामन्यु विक्रान्त यहीं।
है उत्तमौजा द्रौपदी-सुत,
दिखे न कोई क्लान्त कहीं ॥६॥

हैं जो वीर बहादुर अपने,
उनको अब जानें गुरुवर।
मेरे सेना नायक जन को,
देखें पहचानें गुरुवर ॥७॥

यहां आप औ' अश्वत्थामा,
कर्ण कृपा-आचार्य यहां।
सौमदत्ति हैं भीष्मपितामह,
सब हैं युद्धाचार्य यहां ॥८॥

और अन्य शस्त्रों के माहिर,
शूर वीर दल के मेरे।
छोड़े जीवन मोह यहां पर,
खड़े बांकुरे बहुतेरे ॥९॥

इधर भीष्म के अभिरक्षण में,
निर्बल है अपनी सेना।
उधर भीम अभिरक्षक हैं तो,
सबल हुई पाण्डव सेना ॥१०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

अतः चलें अब सभी ओर से,
रक्षा करें पितामह की।
गुरुवर से दुर्योधन बोला,
इसी तरह हम लड़ें सभी ।।११।।

तभी सिंह-सा गर्जन करके,
फूंका शंख पितामह ने।
हुए सभी आनन्द लगे सब,
लड़ने की चर्चा करने ।।१२।।

फिर तो शंखों ढोलों में औ,
जोश भरी मिरदंगों में।
और भयंकर बजे नगारे,
नाद भरी रण सिंगों में ।।१३।।

तभी अचानक धवल तुरंगों,
वाले रथ पर मोहन जी।
और साथ में पार्थ विराजे,
शंख बजाये सह दैवी ।।१४।।

हृषीकेश ने पांचजन्य औ,
देवदत्त को अर्जुन ने।
पौण्ड्र शंख को भीमसेन ने,
अनन्त विजय युधिष्ठिर ने ।।१५।।

औ' सुघोष भी बजा वहीं पर,
मणि पुष्पक के गूंज उठे।
नकुल और सहदेव आदि के,
अपने-अपने शंख बजे ।।१६।।

महाधनुर्धर काशिराज की,
और शिखण्डी योद्धा की।
धृष्टद्युम्न राजा विराट की,
सात्यकि वीर अजेता की ।।१७।।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।

अर्जुन उवाच

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

संजय उवाच

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

द्रुपद राज भूपाल आदि की,
पंचाली के बेटों की।
और सुभद्रा लाल आदि के,
गूंजी नादें शंखों की ॥१८॥

शंखनाद की गुंजन से ही,
जमीं फलक भी गरज गए।
फटा कलेजा कौरव दल का,
डर के मारे लरज गये ॥१९॥

ध्वज कपि वाले अर्जुन ने जब,
सज्जित कौरव दल देखा।
तभी चढ़ाया बाण धनुष पर,
मोहन से यह वचन कहा ॥२०॥

वचन कहा हथियार चलाने,
से पहले यदुनन्दन से।

अर्जुन बोला

हे मनमोहन खड़ा करें रथ,
चलें बीच सब सेनन के ॥२१॥

युद्ध कामना से जो आये,
उनको देखूं जान सकूं।
लड़ना किससे रण में मुझको,
उनको मैं पहचान सकूं ॥२२॥

बुद्धिहीन दुर्योधन के सब,
युद्ध प्रेरकों को देखूं।
हुए एकत्रित योद्धागण जो,
चलो भला उनको देखूं ॥२३॥

संजय ने कहा

हे राजन्, जब अर्जुन जी ने,
मनमोहन से ज्यों बोला।
मनमोहन ने द्रोण भीष्म के,
सेना में रथ त्यों मोड़ा ॥२४॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥२५॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥२६॥

श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥
कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥२८॥

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

खड़ा किया रथ उत्तम अपना,
राजा गण थे बड़े बड़े।
बोले तब मधुसूदन—अर्जुन,
कौरव सारे देख खड़े ॥२५॥

अर्जुन देखा दोनों दल में,
विद्यमान सब अपने हैं।
बड़े पितामह गुरुवर मामा,
सभी सनेही अपने हैं ॥२६॥

मित्र पुत्र सब सगे सहोदर,
ससुर आदि को जब देखा।
दीन वचन में अर्जुन जी ने,
बड़े खेद से यही कहा ॥२७॥

अर्जुन बोले

स्वजन सनेही युद्धाकांक्षी,
देख के अपने लोगों को।
कांधा कम्पित अंग हो गये,
रोम खड़े मेरे देखो ॥

सूख रहा है यह मुंह अपना,
अंग अंग सब शिथिल हुआ।
शून्य हो गया मैं तो मोहन,
पुलकित मन भी कपिल हुआ ॥ २८-२९ ॥

सरके धनुहा कर से मेरे,
त्वचा जलन से धधक रहा।
थिर तो पल भर रहा न जाये,
मन चकराये चक्कर सा ॥ ३० ॥

और साथ ही लक्षण दीखे,
उल्टे हे मन मोहन जी।
रण में अपनों को ही मारूं,
बात नहीं है शोभन की ॥३१॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
तइमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥३४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

चाह नहीं हो विजय हमारी,
हत कर उनके जीवन को।
हे गोविन्दम्, राजभोग सुख,
नहीं चाहिए अब हमको ।।३२।।

जिनको हत कर राजभोग सुख,
की चाहत थी की मैंने।
वे तो हैं आचार्य पितामह,
चाचा मामा सब अपने ।।३३।।

पौत्र-पुत्र हैं, सार-ससुर हैं,
और स्वजन सब मिलकर हैं।
खड़े युद्ध में धन-जीवन के,
लोभ मोह सब तजकर हैं ।।३४।।

या मिल जाए त्रिभुवन सत्ता,
या वे मुझको हत डालें।
तो भी हे मन मोहन ये मन,
चाहे ना उनको मारे ।।३५।।

तो फिर थोड़ी भूमि के लिए,
अपने जन को क्यों मारूं।
उनकी सुख-सुविधा की खातिर,
अपना जीवन ही हारूं ।।

कहां हर्ष होगा मुझको फिर,
मन मोहन इस हत्या से।
उल्टे पाप लगेगा मुझको,
आततायियों को हत के ।।३६।।

चाचा के पुत्रों को मारूं,
बात नहीं जमती मुझको।
सुनो जनार्दन अब मेरा मन,
रह-रह रोक रहा मुझको ।।

तस्मन्नार्हा वयं हन्तु धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ।।३७।।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ।।३८।।

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ।।३९।।

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ।।४०।।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ।।४१।।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।।४२।।

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कलधर्माश्चशाश्वताः ।।४३।।

उचित नहीं है मैं हत डालूं,
अपने ही बांधव जन को।
कैसा सुख है स्वजन मारकर,
मुझे कहें कुछ हे माधव ।।३७।।

मित्र द्रोह कुल नाशक दोषों,
और दोष जो पातक हैं।
नज़र नहीं इनको कुछ आता,
लोभों से ये आहत हैं ।।३८।।

सुनें देव हम जान रहे हैं,
कुल नाशक सब दोषों को।
भला बताएं क्यों न बचाएं,
इन पापों से अपनों को ।।३९।।

कुल नाशन से सभी सनातन,
धर्म नाश हो जाता है।
औ' अधर्म की वृद्धि से सब,
वंश नाश हो जाता है ।।४०।।

और अधर्म की वृद्धि से ही,
दूषित होती कुल नारी।
जिनसे होते वर्णसंकरा,
संकर से अत्याचारी ।।४१।।

नरकवास होता है कुल का,
कुल के घातक संकर से।
अधःपतन पितरों का होता,
पिण्डोदक के वंचन से ।।४२।।

कुल घातक इन संकर के ही,
उत्पादक सब दोषों से।
जाति सनातन कुल धर्मों का,
होता लय इन दोषों से ।।४३।।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः

नरकवास होता है उन कुल,
धर्मनाश से मानव का।
सुनो जनार्दन, सुन आये हम,
निश्चित नरक बना उनका ॥४४॥

है विडम्बना स्वजन मारना,
महापाप पर तुले हमीं।
राजभोग सुख लोभ के लिए,
दंगे पर यूं जुटे हमीं ॥४५॥

शस्त्रहीन से नहीं सामना,
करने की इच्छा मुझको।
शस्त्र लिये सब गान्धारी-सुत,
ही रण में मारें मुझको ॥४६॥

तभी भला बस मेरा होगा,
यह मेरा मन कहता है।
हे मनमोहन, नहीं लड़ेंगे,
ऐसा हमने सोचा है।

संजय बोला

ऐसा कह कर अर्जुन जी ने,
धनुष बाण फिर यूं फेंका।
रण में गम से व्याकुल होकर,
रथ के पीछे जा बैठा ॥४७॥

नोट: श्लोक सं० ४१-४२-४३-४४ का कथन सही ही है। क्योंकि देश की महिलाएं यदि स्वयं अधर्मी रहेंगी, तो अपनी संतान को धर्म की शिक्षा कहां से देंगी ? और जिस सम्प्रदाय में धर्म के प्रति निष्ठा नहीं होती उस सम्प्रदाय में नाना प्रकार के कुकर्मी, भ्रष्टाचारी और उग्रवादी होते हैं जिनका कोई धर्म नहीं होता। इन्हीं में से कुछ ढोंगी लोग मात्र दिखावे के लिए कट्टर धार्मिक भी बनते हैं किन्तु उनकी इस धार्मिक वृत्ति में भी उग्रवाद की ही झलक मिलती है जिससे साम्प्रदायिक दंगों के रूप में उनका कुकर्म सामने आता है, फिर उसे दमन करने के लिए राष्ट्र स्तर

पर सोचना पड़ता है। इसलिए उचित है कि देश की स्त्रियां धर्म के प्रति निष्ठा रखते हुए, ईश्वरीय प्रकोप से भयभीत होते हुए अपनी सन्तान को धर्म की शिक्षा देकर उन्हें नेक, ईमानदार और सर्वगुण सम्पन्न बनाएं—ताकि अपने देश के प्रति निष्ठा रखने वाले उत्तमोत्तम नागरिक उत्पन्न हो सकें। यही सन्देश सभी धर्मों में दिया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में अर्जुन विषाद योग नामक
प्रथम अध्याय समाप्त

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

द्वितीयोऽध्यायः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सांख्ययोग

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

द्वितीय अध्याय

सांख्ययोग

मोह के वश होकर मनुष्य अधर्म को धर्म मानता है। मोह के कारण अर्जुन ने अपने और पराये का भेद किया, इस भेद को मिथ्या बतलाते हुए श्री कृष्ण देह और आत्मा की भिन्नता, देह की अनित्यता और पृथकता तथा आत्मा की नित्यता और उसकी एकता बतलाते हैं। मनुष्य केवल पुरुषार्थ का अधिकारी है, परिणाम का नहीं। इसलिए उसे कर्त्तव्य का निश्चय करके निश्चित भाव से उसमें लगे रहना चाहिए। ऐसी परायणता से वह मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

संजय बोला

दीनदया के दुःख से व्याकुल,
कमल नयन में नीर भरे।
अर्जुन से मधुसूधन ने तब,
वचन कहे ये खरे-खरे॥१॥

श्री भगवान् बोले

हे अर्जुन, बातें मेरी सुन,
तू समोह यह विषम घड़ी।
क्यों यह स्वर्ग विमुख अपयशकर,
बात बुद्धि में अहो पड़ी॥२॥

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ।।३।।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रति योत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ।।४।।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ।।५।।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो
यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम-
स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ।।६।।

सुनो पार्थ, मत बनो नपुंसक,
यह शोभा की बात नहीं।
उठो शीघ्र हे अरि सन्तापक,
करो भीरुता त्याग यहीं ।।३।।*

अर्जुन बोला

गुरुवर हैं और भीष्म पितामह,
पूज्य मेरे हैं मधुसूदन।
इन्हें बाण से रण में मारूं,
यह कैसे हो अरिसूदन ।।४।।

मान्य जनों गुरुओं की हत्या,
से अच्छा भिक्षाटन है।
क्योंकि गुरुवर जन को हत कर,
जीवन ही उच्चाटन है।।

फिर तो हर धन रक्त सना-सा,
भोग हमें करना होगा।
काम रूप भोगों को भोगूं,
जीते जी मरना होगा ।।५।।

हम जीते या वे जीते, हैं,
भला कौन यह ज्ञात नहीं।
कौरव दल को मार जिऊं मैं,
यह तो अच्छी बात नहीं ।।६।।

मेरी इस कायरता ने ही,
सुवृति मेरी मारी है।
शून्य हो गया मैं तो मोहन,
यह मन की लाचारी है।।

---

* ठीक ऐसी ही बातें कुर्आन मजीद के सुर:२, आयत-२१६ में कही गयी हैं। विशेष टिप्पणी के लिए देखें मेरी तीसरी पुस्तक—गीता और कुर्आन में समन्वय।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहंशाधिमां त्वां प्रपन्नम् ।।७।।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्
यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं
राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ।।८।।

संजय उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।।९।।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।११।।

विनय आप से इतना ही है,
मेरा कुछ उद्धार करें।
शिष्य आपके शरणागत हूं,
हितकारी उपकार करें ॥७॥

निष्कंटकधन-धान्य से भरी,
यदि सत्ता ही मिल जाए।
या मिल जाए इन्द्रासन सुख,
या सारा जग मिल जाए॥

फिर भी इन इन्द्रिय के चूसक,
शोक कहो क्या कम होगा?
ऐसा मुझको लगता है कि,
जीते जी मरना होगा ॥८॥

संजय बोला

हे राजन्, अब गुडाकेश जी,
मूक हुए ऐसा कह कर।
मैं न लड़ूंगा कौरव दल से,
हृषीकेश, हे मुरलीधर ॥९॥

हे भारत, जब बैठ गये वे,
सेना बीच उदास हुए।
ऐसे अर्जुन से कुछ हंसकर,
हृषीकेश ने वचन कहे ॥१०॥

श्री कृष्ण बोले

नहीं सोच की बात रही कुछ,
उसी सोच में तुम डूबे।
और बोल तो ऐसे बोले,
जैसे हो पंडित ऊंचे॥

नहीं मौत का गम ज्ञानी को,
जीवित का गम क्या करना।
इसी सृष्टि का नियम बना है,
काल-चक्र जीना-मरना ॥११॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
सम दुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥१७॥

क्योंकि हकीकत में देखें तो,
काल-चक्र का यही चलन।
पहले भी थे और रहेंगे,
मैं तू या ये राजागण ॥१२॥

देही की काया में शैशव,
यौवन और जरा जैसे।
आती है; देहान्तर की भी,
प्राप्ति हुआ करती वैसे॥

इसी नियम की देख अटलता,
देह चाह को खोता है।
ज्ञानी इससे, ऐसे नर को,
मोह नहीं कुछ होता है ॥१३॥

हे कुन्ती के लाल ये गरमी,
सरदी, सुख, दुःख की बातें।
सह तू ऐन्द्रिक अनुभव हैं ये,
ये तो हैं आते-जाते ॥१४॥

श्रेष्ठ पुरुष, जो सुख-दुःख में हैं,
सम रहते उन ज्ञानी को।
व्याकुल विषय नहीं करते हैं,
मोक्ष ही मिलता है उनको ॥१५॥

सत् का नाश नहीं होता,
औ' नहीं असत् की सत्ता है।
इनका निर्णय ज्ञानी जाने,
और न कोई ज्ञाता है ॥१६॥

भरा हुआ है यह जग जिनसे,
अविनाशी जानो उनको।
भला कौन है सक्षम जग में।
नष्ट कर सके जो उनको ॥१७॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥१८॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥२१॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानिसंयाति नवानि देही॥२२॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥

रहने वाले नित्य अपरिमित,
अविनाशी की ये देहें।
कही गयी हैं नाशवान ही,
अतः पार्थ अब युद्ध करें ॥१८॥

हत कर्ता जो इसे मानता,
मरा हुआ जो कहता है।
उभय न जानें, ना ये मारे,
न तो कभी ये मरता है ॥१९॥

नहीं जन्मता और न मरता,
जन्म मरन है कभी नहीं।
यह था और ये कभी न होगा,
ऐसा भी है कभी नहीं ॥

अतः अजन्मा और पुरातन,
शाश्वत ही यह रहता है।
होने पर तन का विनाश भी,
नष्ट नहीं यह होता है ॥२०॥

अविनाशी और नित्य अजन्मा
आत्मा अव्यय जो जाना।
वह कैसे किसको मरवाता,
या किससे उसको मरना ॥२१॥

यथा पुरातन वसन छोड़कर,
मानव नया पहनता है।
जीर्ण देह वैसे ही तज कर,
नया देह अपनाता है ॥२२॥

शस्त्र जीव को नहीं छेदते,
पावक नहीं जलाता है।
नहीं भिगोता पानी इसको,
और न पवन सुखाता है ॥२३॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

ना इसको छेदा जा सकता,
नहीं जलाया जा सकता।
नहीं सुखाया जा सकता है,
नहीं भिगोया जा सकता।।

यह तो थिर है नित्य अचल है,
व्यापक तथा सनातन भी।
हर पल है ये सदा रहेगा।
यह तो पार्थ पुरातन भी।।२४।।

उड़ न सके यह मन इनके तक,
ऐन्द्रिक क्षमता कहां भला।
कोई रोग नहीं है उनमें,
गत की चलती नहीं कला।।२५।।

अगर मानता है तू इनका,
जीना मरना सम्भव है।
तब भी अर्जुन उचित नहीं है,
शोक में डूबा तू जो है।।२६।।

जन्म लिया जो, वही मरेगा,
निश्चित जीना मरना है।
निश्चित सब जो होना है फिर,
उसका गम क्या करना है।।२७।।

भूतमात्र का भूत देखना,
नहीं हेतु इस जग में है।
नहीं भास भावी का होगा,
क्या चतुराई इसमें है।।

भारत उस अव्यक्त ईश से,
ही सब प्राणी व्यक्त हुए।
औ सब लीन उसी में होंगे,
क्या विदग्धता इसमें है।।२८।।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ।।२६।।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ।।३०।।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।।३१।।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।३२।।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।३३।।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययम् ।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ।।३४।।

अद्भुत देखे कोई कोई,
अद्भुत वर्णन करता है।
कोई सुनकर अद्भुत इसका,
ज्ञान नहीं कुछ करता है ॥२९॥

विद्यमान है सब देहों में,
नित्य आत्मा देही है।
उचित नहीं इसका ग़म करना,
भूतमात्र में ये ही है ॥३०॥

धर्म समझकर तुम्हें विकम्पित,
होना उचित नहीं होगा।
धर्म युद्ध क्षत्री के खातिर,
इससे बढ़कर क्या होगा ॥३१॥

अगर चाहते हो कि तुम्हारे,
हेतु स्वर्ग-पट खुला रहे।
तो फिर ऐसे धर्म-युद्ध में,
जुट जाना ही भला रहे ॥

किस्मत वाले क्षत्रिय को ही,
धर्म युद्ध मिल पाता है।
जैसे मानो पार्थ आप ही,
स्वर्ग खुला-सा लगता है ॥३२॥

धर्म प्राप्त ही किया हुआ-सा,
अगर युद्ध तू छोड़ेगा।
पापों के भागी होगा जब,
कीर्ति धर्म तू खो देगा ॥३३॥

और निरन्तर निन्दा तेरी,
जग में होती जाएगी।
हे भलमानुष तेरे हक में,
अपकीरति ही आएगी ॥३४॥

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुया युक्तो द्धयया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

मान मिला है जिन लोगों से,
वे ही सारे महारथी।
तुझे तुच्छ समझेंगे प्यारे,
रण के भय से भागा भी॥३५॥

रिपु तेरे ही बल की निन्दा,
कर-कर के इठलाएंगे।
दुखदायी ही होगी जब वे,
अनकथनी कह जाएंगे॥३६॥

यदि तू मारा जायेगा तो,*
तुम्हें स्वर्ग मिल जायेगा।
और अगर तू जीत गया तो,
भूमि भोग ही पायेगा॥

हे कुन्ती-सुत, उठ जाओ अब,
लड़ना निश्चिय कर डालो।
मार भगाओ दुष्टों को अब,
शंका मन में मत पालो॥३७॥

जीत-हार या हानि-लाभ सब,
अर्जुन सुख-दुख, सम करके।
कमर बांध लो समर के लिए,
अपना निश्चय थिर करके॥३८॥

तर्कवाद का तर्क सुना कर,
धर्म तुझे बतलाया है।
कर्म बंध तू तोड़ सकेगा,
योगवाद अब आया है॥३९॥

नहीं नतीजा उलटा होता,*
नष्ट आरम्भ न होता है।
थोड़ा भी यह धर्म धरे जो,
घोर पाप से बचता है॥४०॥

---

*कुर्आन मजीद-पारा-५, सूरह-४, आयत-७४ में भी ठीक यही बात कही गई है। देखें, मेरी दूसरी पुस्तक गीता और कुर्आन में समन्वय।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥४१॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥४२॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥४३॥

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥४४॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥४५॥

प्रज्ञा योगवादियों की तो,
एक रूप निश्चित होती।
और अनिश्चितमति वालोंकी,
कृति सारी अस्थिर होती ॥

बुद्धि अनेकों शाखाओं में,
छिन्न-भिन्न बंट जाती है।
यही वासना हे कुरुनन्दन,
सरे आम कहलाती है ॥४१॥

इससे अन्य न लोक कहीं यह,
कहने वाले अज्ञानी।
वेदवादियों ने हे अर्जुन,
स्वर्ग श्रेष्ठ ही है मानी ॥४२॥

कर्म फलों के भोग हेतु ही,
जन्म-मरण जन पाते हैं।
वैभव के प्रति आकर्षण में,
सच्चे सुख क्या आते हैं ॥४३॥

वढ़ा-चढ़ा कर चर्चा करके,
मुग्ध उसी में रहते हैं।
बुद्धिहीन वे होते हैं औ;
हरदम भटका करते हैं ॥

सुनो पार्थ, इन वेदवादियों,
कर्मकाण्डियों को समझो।
तुच्छ फलों की इच्छा में सब,
भूल गए हैं जो खुद को ॥४४॥

हे अर्जुन, तुम लिप्त न होना,
वेद के उन गुन तीनों में।
नित्य सत्य में थिर रहकर मत,
धसना सुख-दुख द्वन्द्वों में ॥४५॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

कार्य कूप के जो भी हैं, सब,
तालों से हो जाते हैं।
वैसे ही बस ब्रह्म-ज्ञान से,
वेद सार सब पाते हैं ॥४६॥

सिर्फ कर्म पर तेरा हक हो,
फल में हो अधिकार नहीं।
फल के कारण कर्म न करना,
करना कृति बेकार नहीं ॥४७॥

समता का ही नाम योग है,
रहो योग में अर्जुन तुम।
त्याग करो चाहों का हर पल,
यही बात निज मन में गुन ॥४८॥

फल की इच्छा वाले मानव,
दया पात्र कहलाते हैं।
समत्व बुद्धि की तुलना में तो,
कर्म तुच्छ रह जाते हैं ॥४९॥

पाप पुन्य से बचता है वह,
जो भी समता रखता है।
अतः यत्न कर समत्व का ही,
समता कार्य कुशलता है ॥५०॥

निष्कलंक वे गति पाते हैं,
मतिसमत्व होता जिनका।
कर्मफलों का त्याग जो करें,
बन्ध नहीं होता उनका ॥५१॥

मोह रूप इस कीचड़ से जब,
बुद्धि पार तेरी होगी।
सुन रखे या अब जो सुनोगे,
चिन्ता दोनों में होगी ॥५२॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ।।५३।।

अर्जुन उवाच

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत किम् ।।५४।।

श्रीभगवानुवाच

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ।।५५।।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।५७।।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञाप्रतिष्ठिता ।।५८।।

श्रुतियां सुनकर व्यग्र बुद्धि जो,
पार्थ हो गयी है तेरी।
थिर समाधि में तब होगी जब,
समता मति होगी तेरी।।५३।।

अर्जुन बोला

समाधिस्थ औ स्थितप्रज्ञ का
लक्षण कैसा होता है।
कैसे बोले, कैसे बैठे,
औ कैसे वह चलता है।।५४।।

भगवान् बोले

जब मानव मन में उठती हर,
इच्छाओं का त्याग करे।
खुद-ही-खुद में तुष्ट हुए औ,
थिर प्रज्ञा में आप रहे।।५५।।

दुखी नहीं हो दुख से जो भी,
सुख की चाह नहीं जिसको।
वही बुद्धि-थिर-मुनि होगा जो
राग क्रोध भय युक्त न हो।।५६।।

उसकी मति थिर रहती है जो
शोक हर्ष में सम रहता।
राग रहित है पुरुष वही जो,
नहीं खुशी ना ग़म करता।।५७।।

जैसे कच्छप सभी ओर से,
अंग छिपा कर रहता है।
थिर मति वैसे ही इंद्रिय पर,
कब्जा कस कर करता है।।५८।।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ।।५९।।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ।।६०।।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।।६१।।

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशात्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ।।६५।।

तन का धारण करने वाला,
निराहार जब रहता है।
विषय मन्द पड़ जाते उसके,
ईश्वर भी मिल जाता है ॥५९॥*

यत्नशील होने पर भी ये,
मन को जबरन हर लेतीं।
प्रबल इन्द्रियां विद्वानों के,
मन को मथकर रख देतीं ॥६०॥

वश में रखकर सभी इन्द्रियां,
योगी तन्मय हों मुझ में।
उसकी प्रज्ञा थिर होती है,
जो रहता अपने वश में ॥६१॥

विषयों की चिन्ता हर नर को,
अपनी ओर लुभाती है।
और कामना बढ़ती जाती,
क्रोध कामना लाती है ॥६२॥

क्रोध मूढ़ता को जन्माती,
स्मृति भ्रांति हो जाए जभी।
स्मृतिभ्रांत से भ्रष्ट बुद्धि फिर,
तो विनाश है निश्चय ही ॥६३॥

जिसका मन अधिकार में रहे,
खुद रहता अपने वश में।
इन्द्रिय का व्यापार भी करे,
खुश रहता है वह जग में ॥६४॥

चित्त खुशी में रहता जिनका,
दुःख दूर हो जाते हैं।
उनकी बुद्धि थिर रहती जो,
चित्त खुशी में रखते हैं ॥६५॥

---

* कुर्आन मजीद पारा-२, सूरह-३, आ० १८२ में यही बात कही गयी है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥६७॥

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे ।
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

विहाय कामान्यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥७१॥

जिसे समत्व नहीं है उसको,
भक्ति और विवेक नहीं।
बिना भक्ति के शांति नहीं है,
शान्ति नहीं तो सुखी नहीं ॥६६॥

जल में से जिस तरह नाव को,
हवा खींच ले जाती है।
वैसे मन चंचल मानव को,
बुद्धि खींच ले जाती है ॥६७॥

इसीलिए हे महाबाहु, सुन,
बुद्धि उसी की थिर रहती।
जिसकी इन्द्रिय हर विषयों से,
बचकर वश में खुद रहती ॥६८॥

जब सब प्राणी सो जाते हैं,*
संयमी जागता रहता है।
लोग जागते रहते हैं जब,
ज्ञानवान् मुनि सोता है ॥६९॥

सागर अचल रहे जैसे सब,
नदियों के भरने से भी।
वैसे मानव शांत ही रहे,
जगत भोग करने से भी ॥

शान्ति वही पाता है जग में,
गर्व रहित जो होता है।
इच्छा ममता सभी कामना,
त्याग पुरुष जो करता है ॥७०॥

हालत उसकी ऐसी होती,
प्रभु को जाने जो अपने।
सुनो पार्थ फिर मोह न उसको,
कर पाता वश में अपने ॥७१॥

\+ इसकी टिप्पणी देखें, गीता और कुर्आन में समन्वय नामक पुस्तक में कुर्आन श० के सुरः ३२, आयत सं० १६ में ठीक यही बात कही गयी है।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्याय:

मरण काल में भी ऐसे ही,
टिके रहे तो हे अर्जुन !
परमधाम को वह पाता है,
सारे जग से कह दो तुम ॥७२॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्री कृष्णार्जुन संवाद में संख्ययोग नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त

अथ श्रीमद्‌भगवद् गीता
हिंदी पद्यानुवाद

तृतीयोऽध्याय:

अथ तृतीयोऽध्यायः

कर्मयोग

अर्जुन उवाच

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यासनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

तीसरा अध्याय

कर्मयोग

अर्जुन बोला

हे मधुसूदन, कर्म से बड़ी,
मति यदि यूं बतलाते हैं।
तो केशव क्यों घोर कर्म में,
मुझको आप लगाते हैं ।।१।।

मिले जुले ये वचन आपके,
मुझे सशंकित करते हैं।
अतः आप निश्चय बतलायें,
जिन से हम तर सकते हैं ।।२।।

कृष्ण बोले

दो ही गति बतलायी मैंने,
हे अर्जुन जी इस जग की।
सांख्य योग से ज्ञानी जन की,
कर्मों से योगी जन की ।।३।।

कर्म नहीं करने से कोई,
मुक्त नहीं होता उनसे।
कर्म त्याग करने से भी वह,
सफल नहीं होता उनसे ।।४।।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥८॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचार ॥९॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥१०॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥११॥

कर्म बिना क्षण भर भी कोई,
लोग नहीं रह पाते हैं।
सत रज तम गुण ही लोगों से,
कर्म सभी करवाते हैं ॥५॥

कर्म इन्द्रियों को रोके जो,
मन से चिन्तन करता है।
ऐसे अज्ञानी लोगों को,
दंभी यह जग कहता है ॥६॥

अर्जुन निज इन्द्रियों को मन से,
रोक - रोक जो चलता है।
उत्तम है वह अनासक्त जो,
निज विषयों में रहता है ॥७॥

इसीलिए तू नियत कर्म कर,
कर्म अकर्म से अच्छा है।
कर्म बिना इस तन का पोषण,
नहीं किसी का होता है ॥८॥

ईश्वर निर्मित कर्म बिना हर,
कर्म बांधता है मन को।
हे कुन्ती-सुत, रागरहित हो,
यज्ञ अर्थ तुम कर्म करो ॥९॥

पूर्व सृष्टि के ब्रह्मा जी ने,
यज्ञ सहित जग पैदा कर।
कहा यज्ञ से बढ़ो सभी औ,
यही यज्ञ दे अच्छा फल ॥१०॥

यज्ञों से ही तुम देवों का,
औ तेरा वे सब सुरगण।
करो परस्पर श्रेष्ठ लाभकर,
एक दूसरे का पोषण ॥११॥

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।
तस्मात्सर्वंगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

तृप्त यज्ञ से हुए देव सब,[1]
तुमको इच्छित फल देंगे।
भोग करें जो दिये देव बिन,
चोर सभी वे सब होते॥१२॥

यज्ञ से बचा खाने वाले,[2]
पापों से छुट जाते हैं।
वे हैं खाते पाप जो अपने,
खातिर पाप पकाते हैं॥१३॥

अन्न मात्र से भूत उपजते,
अन्न उपजता वर्षा से।
यज्ञों से वर्षा होती है,
यज्ञ कर्म से होता है॥१४॥

प्रकृति ब्रह्म से होती है औ,
कर्म प्रकृति से होता है।
अतः जान तू कण-कण व्यापक,
ब्रह्म यज्ञ में रहता है॥१५॥

पूर्व रीति से चले नहीं जो,[3]
पापी है उसका जीवन।
रमे हुए इन्द्रिय सुख में जो,
पार्थ व्यर्थ उसका जीवन॥१६॥

रमण करे जो खुद ही में औ,
तृप्त उसी में रहता है।
तुष्ट उसी में जो रहता कुछ,
उसे न करना पड़ता है॥१७॥

---

१. कुर्आन मजीद—सूरह ६, आयत ११८-१२१ में यही बात कही गयी है।
२. पूर्वरीति की ओर कुर्आन मजीद में भी इशारा है, देखें सूरह हामीम—आयत ४३३।
३. गीता और कुर्आन में समन्वय में विशेष टिप्पणी का उल्लेख किया गया है।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

कर्म न करने या करने में,
नहीं स्वार्थ कुछ उसका है।
भूत मात्र में उसका कोई,
स्वार्थ नहीं कुछ अपना है ॥१८॥

इसलिए तू संगरहित रह,
कर्म निरन्तर करता चल।
मोक्ष वही पाता है नर जो,
संगरहित रहता हर पल ॥१९॥

कर्मों से ही जनक आदि ने,
परम प्रतिष्ठा पायी है।
कर्मों की चर्चा जनहित में,
इसी दृष्टि से आयी है ॥२०॥

महा पुरुष जो-जो करता है,
अन्य वही सब करते हैं।
सत्पुरुषों से सीख मिली जो,
लोग वही अपनाते हैं ॥२१॥

हे अर्जुन, मैं बाध्य नहीं हूं,
कर्तव्यों के बन्धन से।
जो चाहूं सो पा जाऊं पर,
कर्मनिष्ठ हूं हरदम से ॥२२॥

यदि मैं यूं आलस्य छोड़कर,
कर्म नहीं कुछ करता हूं।
सभी वही स्वीकार करेंगे,
जैसा भी मैं करता हूं ॥२३॥

अगर कर्म मैं नहीं करूं तो,
भ्रष्ट सभी हो जायेंगे।
घात मुझे करना होगा फिर,
संकर सब हो जायेंगे ॥२४॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२९॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

कर्म के विषय में अज्ञानी,
जैसे हर दम मुग्ध रहे।
वैसे ज्ञानी रागरहित हो,
जनहित ही कुछ कर्म करे ॥२५॥

अज्ञानी के चंचल मन, मत,[1]
ज्ञानी डांवाडोल करें।
सब समता से मिल-जुल कर ही,
कर्म करायें और करें ॥२६॥

प्रकृति के ही गुणों के द्वारा,
कर्म यहां सब होते हैं।
अहंकार से मूढ़ लोग जो,
कर्ता खुद को कहते हैं ॥२७॥

अर्जुन, ज्ञानी गुण कर्मों के,
गुण ही गुण में करते हैं।
यही मानकर कभी नहीं,
आसक्त किसी में रहते हैं ॥२८॥

प्रकृति के सब गुणों से मोहित,
जन जो हैं आसक्त परे।
ऐसे अज्ञानी को ज्ञानी,
विचलित कर्मों से न करें ॥२९॥

मति विवेक से हे अर्जुन, सब,
कर्म मुझी में अर्पण कर।
युद्ध करो आसक्ति छोड़कर,
ममता रागरहित हो कर ॥३०॥

---

१. कुर्‌आन मजीद पारा ६, आयत १०२ में इसी प्रसंग मे अच्छी तरह समझाया गया है।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥३१॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः॥३२॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥३३॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥३४॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥३५॥

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥३६॥

श्रद्धा रख कर द्वेष छोड़कर,[1]
मेरे मत जो चलते हैं।
कर्म-बन्ध से छुट जाते सब,
और मुक्त हो जाते हैं॥३१॥

मेरे मत को दोष युक्त कह,[2]
नहीं आचरण करते जो।
ज्ञानहीन वे मूर्ख लोग हैं,
हुए नष्ट सब वे समझो॥३२॥

ज्ञानी भी सब प्राणी भी निज,
निज स्वभाव में रहते हैं।
एक दूसरे का हे अर्जुन,
कभी न निग्रह करते हैं॥३३॥

इन्द्रिय को अपने विषयों में,
राग द्वेष होता ही है।
वश में उसके पुरुष मत रहे,
सब उसके बाधक ही हैं॥३४॥

अपना ही है धर्म श्रेयस्कर,
भले अन्य से विगुण रहे।
निधन नेक निज धर्मों में है,
औ पर धर्म भयावह है॥३५॥

अर्जुन बोला

फिर भी नर क्यों बलपूर्वक ही,
प्रेरित जैसे रहता है।
अनचाहे किसके प्रेरित से,
पाप कर्म सब करता है॥३६॥

---

१. कुर्आन मजीद पारा १, आयत संख्या ११२ में ठीक यही बात कही गयी है।
देखें गीता और कुर्आन के समन्वय में।

२. ठीक यही बात कुर्आन मजीद पारा ४, सूरह ३, आयत संख्या १८७-१८८ में कही गयी है।

श्रीभगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

भगवान बोले

रज गुण से उत्पन्न हुए जो,
काम क्रोध से दोनों हैं।
तृप्ति नहीं इनकी होती है,
बैरी बस ये दोनों हैं॥३७॥

आग धूम से मुकुर मैल से,
यथा ढका रह जाता है।
गर्भ चर्म से, तथा काम से,
ज्ञान ढका रह जाता है॥३८॥

अर्जुन यह दुष्पूरण ज्वाला,
काम सदा का दुश्मन है।
आवृत रहता ज्ञान उसी से,
ज्ञानी का यह बन्धन है॥३९॥

मन बुद्धि और इन्द्रिय सारे,
अधिष्ठान सब इसके हैं।
ज्ञान इन्हीं से ढक जाता है,
मानव मोहित रहते हैं॥४०॥

अतः पार्थ, हर इन्द्रिय अपना,
अपने वश में ही करके।
ज्ञान नाश करने वाले इस,
पापी को बिलकुल तज दे॥४१॥

सूक्ष्म इन्द्रियां हैं, इनसे भी,
अधिक सूक्ष्म ये मन ही है।
इससे प्रज्ञा और सूक्ष्म है,
आत्मा तो इससे भी है॥४२॥

इसी भांति ही बुद्धि से परे,
आत्मा को जानो अर्जुन।
काम रूप दुश्मन को मारो,
मन को वश में कर लो तुम॥४३॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में
कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय समाप्त॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

चतुर्थोऽध्यायः

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ज्ञान-कर्म-संन्यास योग

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥१॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप॥२॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥३॥

अर्जुन उवाच

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥४॥

चौथा अध्याय

ज्ञान-कर्म-संन्यास योग

श्री भगवान् बोले

मैंने पहले विवस्वान से,
अविनाशी यह योग कहा।
विवस्वान ने मनु से बोला,
मनु ने फिर इक्ष्वाकु से कहा ॥१॥

राजर्षियों ने भी जाना,
परम्परा से इसी तरह।
फिर वह नष्ट हुआ ये समझो,
बहुत काल से परंतप ॥२॥

सर्वोत्तम की बात योग ये—,
तुझ उत्तम से बोला है।
यही पुरातन है रहस्य जो,
आज तुम्हीं से खोला है ॥३॥

अर्जुन बोला

जन्म आपका अभी हुआ है,
विवस्वान का पहले ही;
मैं कैसे जानूं कि आपने,
बात योग की उनसे की ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥५॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥६॥

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥७॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥८॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥९॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥१०॥

श्री भगवान बोले

हे अर्जुन मेरे औ तेरे,[1]
जन्म हो चुके बहुतेरे।
तुझको तो कुछ याद न होगा,
मुझे याद हैं हर फेरे॥५॥

भूतमात्र का मैं हूं ईश्वर,
मैं ही नित्य अजन्मा हूं।
फिर भी अपनी माया से ही,
बार-बार मैं जन्मा हूं॥६॥

हे भारत! सुन यही धर्म जब[2],
क्षीण दशा में होता है।
और पाप जब-जब बढ़ता है,
जन्म हमारा होता है॥७॥

साधु जनों का हित करने को,
घात दुर्जनों का करने।
और धर्म की रक्षा करने,
युग-युग जन्म लिया मैंने॥८॥

भान हुआ है जिसको मेरे,
दिव्य जन्म औ कर्मों का।
तन तजकर मुझको पाता फिर,
नहीं जन्म उसका होता॥९॥

राग क्रोध भय रहित ध्यान से,
मुझको ही जो भजते हैं।
वही मुझे पाते हैं सब जो,
ज्ञान रूप तप करते हैं॥१०॥

१-२. चूंकि ब्रह्म तो अजन्मा है इसलिए इस कथन के समर्थन में ही कुर्आन मजीद में बार-बार पैगम्बर भेजने की बात कही गयी। देखें—पारा १७, आयत-७-८-९

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

जो जैसा मुझको भजता है,[1]
उसी भांति फल देता हूं।
सभी तरह से पार्थ सबों पर,
मैं ही शासन करता हूं ॥११॥

कर्म सिद्धि के इच्छित जन सब,
भक्ति सुरों की करते हैं।
क्योंकि सद्य ही इसी लोक में,
कर्म जनित फल मिलते हैं ॥१२॥

गुण कर्मों से पैदा करके,
मैं ही चारों वर्णों का।
कर्ता हूं पर मुझको समझो,
अविनाशी औ अनकर्ता ॥१३॥

नहीं बांधता कर्म मुझे औ,
कर्म फलों की चाह नहीं।
इसी भांति जो मुझको जाने,
मिले उसी को राह सही ॥१४॥

मोक्ष चाहने वालों ने है,
पूर्वकाल यह कर्म किया।
वैसे ही निज पूर्वज जैसे,
हे अर्जुन कर कर्म सदा ॥१५॥

है क्या कर्म अकर्म यहां भी,
मोह हुआ ज्ञानी जन को।
उसी कर्म को मैं कहता हूं,
मुक्ति मिलेगी तब तुमको ॥१६॥

---

१. ठीक यही बात अल्लाह के लिए कुर्आन मजीद के पारा-२८, सू०-५६, आयत-२०-२८ में कही गयी है (चूंकि प्रथम पृष्ठ पर ही बता दिया गया है कि श्रीकृष्ण जी ने फनाफिल्लाह के मोकाम में यह उपदेश दिया है अतः मुसलमान भाई यहां सन्देह न करें)।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥१७॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥१८॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥१९॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥२०॥

निराशोर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥२१॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥२२॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते॥२३॥

कर्मों की गति गहन जानकर,
जानो उनके भेदों को।
कर्म अकर्म विकर्म भेद से,
समझो बूझो तुम इनको ॥१७॥

कर्मों में जो अकर्म देखें,
औ अकर्म में कर्मों को।
बुद्धिमान् वे सब होते हैं,
योगी भी समझो उनको ॥१८॥

जिसके सब आरंभ कामना,
औ है सब संकल्परहित।
दग्ध हो गये कर्म ज्ञान से,
उन्हें लोग कहते पंडित ॥१९॥

जिसने त्यागा कर्म फलों को,
सदा तुष्ट जो रहता है।
आस विना हर कर्म करे जो,
वही नहीं कुछ करता है ॥२०॥

निज वश में मन करके जिसने,
संग्रह सारा छोड़ दिया।
तन भर जिसका कर्म करे औ,
मुंह आशा से मोड़ लिया ॥२१॥

यथा लाभ से तुष्ट रहे जो,
नहीं कहीं अनुरक्त हुआ।
द्वेष रहित समझा जो जग को,
कर्म-बंध से मुक्त हुआ ॥२२॥

जो आसक्ति रहित है जिसका,
चित्त ज्ञानमय होता है।
यज्ञ अर्थ जो कर्म करे वह,
कर्म सभी लय होता है ॥२३॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥२५॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥२६॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

ब्रह्म यज्ञ में अर्पण है औ,
वही हवन में होता है।
ब्रह्म रूप है अग्नि में वही,
वही हवन का कर्ता है॥

इसी तरह कर्मों से जिसने,
मेल ब्रह्म का साधा है।
सच कहता हूं हे अर्जुन बस,
वही ब्रह्म को पाता है॥२४॥

ब्रह्म के सिवा कितने योगी,
सुर की पूजा करते हैं।
औ तो कितने ब्रह्म अग्नि में,
होम यज्ञ से करते हैं॥२५॥

औ कितने ही श्रवण आदि सब,
इन्द्रिय संयम करते हैं।
शब्द आदि विषय इन्द्रिय को,
होम अग्नि में करते हैं॥२६॥

कितनों में तो निज संयम से,
ज्ञान दीप जल उठते हैं।
इस में इन्द्रिय प्राण कर्म को,
होम योग से करते हैं॥२७॥

यज्ञ अर्थ में द्रव्य आदि कुछ,
देने वाले होते हैं।
कितने ही अष्टांग योग तप,
करने वाले होते हैं॥२८॥

स्वाध्याय और ज्ञान यज्ञ कुछ,
करने वाले होते हैं।
याज्ञिक है कुछ यत्नशील व्रत,
करने वाले होते हैं॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः ॥२६॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तत्पर रहने वाले कितने,
प्राणायाम जो करते हैं।
अपान वायु को प्राण वायु में,
प्रान अपान में करते हैं॥२९॥

नियताहार अपर जो जन हैं,
होम प्राण को प्राणों में।
करते हैं औ धोते हैं निज,
पाप ज्ञान के यज्ञों में॥३०॥

हे कुरुसत्तम, यज्ञ से बचा,[1]
जो जन अमृत खाते हैं।
पाते हैं वो ब्रह्म सनातन,
यज्ञ हीन रह जाते हैं॥

यज्ञ हीन को लोक नहीं पर-
लोक कहां से पायेगा।
यज्ञ कर्म से जग में है जो,
ब्रह्म लोक वह पायेगा॥३१॥

कई तरह के यज्ञों का है,
वर्णन कितने वेदों में।
इन यज्ञों को कर्मज जानो,
तुझे मोक्ष है कर्मों में॥३२॥

ज्ञान यज्ञ ही द्रव्य यज्ञ से,
उत्तम समझे जाते हैं।
पार्थ, ज्ञान में कर्म मात्र से,
अखिल पदों को पाते हैं॥३३॥

तत्त्व ज्ञानियों की सेवा कर,
और पूछ कर बारम्बार।
इसे जानता तू, हे अर्जुन,
नम्र निवेदन करो हजार॥३४॥

१. ठीक यही बात कुर्आन मजीद सूरह-६, आयत-११८-११९ में कही गई है।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥३७॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४१॥

हे अर्जुन बस इसी ज्ञान से,
मोह नहीं तुझको होगा।
फिर तो मुझमें औ अपने में,
हर प्राणी को देखेगा ॥३५॥

बड़े से बड़ा पापी से गर,
बढ़ कर भी हो जाएगा।
ज्ञान रूप नौका पर चढ़ हर,
पाप पार कर जाएगा ॥३६॥

ईंधन जलकर ज्वलित अग्नि में,
यथा भस्म हो जाता है।
वैसे ही सब ज्ञान अग्नि में,
भस्म कर्म हो जाता है ॥३७॥

नहीं ज्ञान-सा इस धरती पर,
शुचि कुछ समझा जाता है।
जिसे समय पर आप ही पुरुष,
योग सिद्धि से पाता है ॥३८॥

श्रद्धावान जितेन्द्रिय मानव,
ज्ञान आप ही पाता है।
ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही परम-
धाम शान्ति का पाता है ॥३९॥

अज्ञानी औ संशय वाला,
श्रद्धाहीन जो होता है।
सुख खोता दोनों लोकों का,
नष्ट आप ही होता है ॥४०॥

समता से ही कर्म फलों का,
त्याग किया जिस मानव ने।
और ज्ञान से छिन्न-भिन्न कर,
डाला सब संशय अपने ॥४१॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।

हे अर्जुन, अज्ञानज संशय,
ज्ञान-खड्ग से छेदन कर।
युद्ध हेतु हो उद्यत, समता,
कर्म योग में हो स्थिर ॥४२॥

श्रीमद्भगवद् गीता के श्रीकृष्णार्जुन-संवाद में ज्ञानकर्म संन्यास योग नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

पंचमोऽध्यायः

अथ पंचमोऽध्यायः

कर्मसंन्यास योग

अर्जुन उवाच

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।।२।।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो नद्वेष्टि न कांक्षति ।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।३।।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ।।४।।

पांचवां अध्याय

कर्मसंन्यास योग

अर्जुन बोला

कर्मत्याग फिर कर्मयोग का,
खुद ही वर्णन करते हैं।
अहो, कृष्ण ! अब इनमें बोलें,
उत्तम किसको कहते हैं ॥१॥

श्रीभगवान बोले

कर्मत्याग औ' योगकर्म ये,
सभी मुक्ति के दाता हैं।
इन दोनों में योग कर्म ही,
बढ़कर जाना जाता है ॥२॥

द्वेष नहीं करता जो मानव,*
और न इच्छा करता जो।
द्वन्द्वरहित है बन्धमुक्त वह,
संन्यासी उसको समझो ॥३॥

सांख्य योग औ' ज्ञान कर्म को,
भिन्न मूर्ख ही कहता है।
और एक से थिर रहता जो,
दोनों का फल पाता है ॥४॥

---

* द्वेष न करने के सन्दर्भ में कुर्आन मजीद में बड़ी अच्छी बात समझायी गयी है। देखें—कु० सूरह-२९, आयत-४६।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपंश्वसन् ॥८॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

जो पद सांख्यमार्गी पाता,
योगी भी वह पाता है।
वह तो सच्चा द्रष्टा है औ,
सांख्य योग सम पाता है॥५॥

कर्म योग बिन कर्म त्यागना,
कष्ट साधना होता है।
फिर भी मुनि हर कष्ट साधकर,
मोक्ष प्राप्त ही करता है॥६॥

योग साधना जिसने साधा,
हिय को शुद्ध किया जिसने।
जिसने मन इन्द्रिय को जीता,
भूत मात्र देखा खुद में॥

ऐसा मानव करे कर्म औ,
लिप्त नहीं रहता उसमें।
हे अर्जुन! बातें मेरी सुन,
उत्तम गुन पाया उसने॥७॥

सुनते, छूते, देख, सूंघते,
खाते चलते सोते भी।
बोल बोलते आंख खोलते,
सांस छोड़ते लेते भी॥८॥

करती हैं सब काम इन्द्रियां,
योगी ज्ञानी यह समझें।
नहीं कभी हम कुछ करते हैं,
यही भावना सब रख लें॥९॥

कर्म ब्रह्म को अर्पण कर हर,
कर्म पुरुष जो करता है।
संग त्याग आचरण जो करे,
पाप मुक्त वह रहता है॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥१३॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

पापों में वह लिप्त न रहता,
यह मिसाल देखें ऐसे।
चाह छोड़ वह यूं रहता है,
जल में जलज-पत्र जैसे ॥१०॥

तन से मन से बुद्धिमात्र से,
या इन्द्रिय से योगी जन।
करते हैं आसक्ति छोड़कर,
आत्म शुद्धि के लिए कर्म ॥११॥

समतावान कर्म फल त्यागे,
परम शान्ति पा जाता है।
और कामना फल वाला तो,
फंस कर ही रह जाता है ॥१२॥

करके त्याग सभी कर्मों का,
पुरुष संयमी निज मन से।
सुख से रह कुछ नहीं करे नव,
देहरी युक्त नगर तन से ॥१३॥

इस जग का प्रभु कर्तापन औ,
कर्म नहीं कुछ रचता है।
सभी प्रकृति ही करती है औ,
स्वयं कर्म फल मिलता है ॥१४॥

नहीं ओढ़ता कभी किसी के,
पाप पुण्य को वह ईश्वर।
लोभ मोह में फंस जाते सब,
ज्ञानों के ढक जाने पर ॥१५॥

आत्मज्ञान के द्वारा जिनके,
हुए नाश अज्ञान सभी।
परम तत्त्व दर्शन करवाता,
सूर्य सरीखे ज्ञान यही ॥१६॥

तद् बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।१७।।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।१८।।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।१९।।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ।।२०।।

लोग ज्ञान से पाप धो लिये,[1]
ईश्वर का जो ध्यान धरें।
उसी में लगे थिर हैं जो सब,
वही मोक्ष को प्राप्त करें ॥१७॥

विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण,
गज गायों औ श्वानों में।
कुत्ते खाने वालों में भी,
ज्ञानी सम हर मानों में ॥१८॥

जिनका मन थिर समता है,[2]
वही जगत को जीत लिया।
निष्कलंक समभावी है जो,
स्वयं ब्रह्म मे लीन हुआ ॥१९॥

बुद्धि हुई है जिसकी थिर औ,[3]
जिसका हर भय नष्ट हुआ।
ब्रह्म ज्ञान जो रखता है औ,
ब्रह्म परायण व्यस्त हुआ।

वह प्रिय पा कर सुखी न होता,
अप्रिय पाकर दुःखी नहीं।
प्रिय अप्रिय में सम रहता वह,
सुख-दुःख में दुःख-सुखी नहीं ॥२०॥

---

१. कुर्आन मजीद में भी कहा गया है—"और जो शख्स कोई नेक काम करे—मर्द हो या औरत और वह ईमान रखता हो तो ऐसे लोग जन्नत में दाखिल होंगे और जरा भी उनका हक़ न मारा जायेगा और उस शख्स से ज्यादा किसकी राह अच्छी है।" —कुर्आन

२. "जिसने अल्लाह के आगे अपना सिर झुका दिया, वही नेक कार है।" —कु० म० पारा-५, सूरह-४, आयत-१२४-१२५

३. ठीक यही सुझाव-कुर्आन मजीद में है। देखें, सूरह ३९, आयत १०

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।२१।।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ।।२२।।

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३।।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ।।२४।।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।।२५।।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।२६।।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वानासाभ्यन्तरचारिणौ ।।२७।।

कभी बाहरी विषय आदि में,[1]
चाह नहीं जो रखता है।
मन-ही-मन आनन्द भोग वह,
अक्षय अनुभव करता है ॥२१॥

विषय जनित हर भोग दुखों के
है कारण यह पार्थ सुनें।
आदि अन्त वाले हैं ये सब,
बुद्धिमान इसमें न फंसें ॥२२॥

जीवन में जिस मानव ने है,
काम क्रोध का वेग सहा।
उसने समता को पाया औ,
जीवन में वह सुखी रहा ॥२३॥

अन्तर्मन आनन्द जिसे है,
शान्ति हृदय में जिसके है।
ब्रह्म रूप निर्वाण वो पाता,
अन्तर्ज्ञान भी जिसके है ॥२४॥

जिनके जग में पाप नष्ट हैं,
शान्त हो गयीं शंकाएं।
मन वश कर जन हित में हैं जो,
ब्रह्म मुक्ति वे ही पायें ॥२५॥

जिसने जीता काम क्रोध औ,
जिसने खुद को जान लिया।
जिनका मन अपने वश में है,
उन्हें ब्रह्म निर्वाण मिला ॥२६॥

बहिष्कार कर भोग विषय का,
दृष्टि बीच भृकुटी करके।
घ्राण द्वार से प्राण अपान की,
गति समान सब की करके ॥२७॥

---

१. ठीक यही सुझाव कुर्आन मजीद में है। देखें—
—सूरह-३६, आयत-१०

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पंचमोऽध्यायः ॥

मन प्रज्ञा इन्द्रिय वश में कर,
क्रोध चाह भय रहित हुए।
वह मुनि मुक्त सदा रहता है,
मोक्ष परायण खुद रह के ॥२८॥

यज्ञ तपों के भोक्ता मुझको,
हर लोकों का ईश्वर जान।
शान्ति प्राप्त करते जन, मुझको,
भूतमात्र का हितकर जान ॥२९॥

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के श्री कृष्णार्जुन संवाद में कर्मसंन्यासयोग नामक पंचम अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

षष्ठोऽध्याय:

अथ षष्ठोऽध्यायः

आत्मसंयम योग

श्रीभगवानुवाच

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

छठा अध्याय

आत्मसंयम योग

श्रीभगवान बोले

कर्म फलों के आश्रय विन जो,
विहित कर्म नर करता है।
वही सही संन्यासी है औ,
योगी भी कहलाता है॥

और अग्नि जो तज कर रहता,
क्रिया त्याग सब करता है।
वही न योगी संन्यासी है,
जो भी बैठा रहता है॥१॥

योग उसे जानो हे अर्जुन,
कहते सब संन्यास जिसे।
कभी न योगी हो सकते जो,
मन संकल्प न त्याग सके॥२॥

योग साधने वाले मुनि का,
कर्म योग का साधन है।
जिसने उसको साध लिया वस,
वही शान्ति का साधन है॥३॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ।।४।।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।५।।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।६।।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ।।८।।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।९।।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।१०।।

नर आसक्त नहीं होता है,
कर्मों में औ विषयों में।
योगारूढ़ वही कहलाता,
संकल्पों के त्यागों में ॥४॥

आत्मा से आत्मा का ही सब,
मानव निज उद्धार करे।
आत्मा निज की शत्रु मित्र है,
अधःपतन उसका न करे ॥५॥

उसकी आत्मा बन्धु है जिसने
निज बल से मन को जीता।
और न जिसने मन को जीता,
वही शत्रु है अपना होता ॥६॥

जिसने अपने मन को जीता;
पूर्ण रूप जो शान्त हुआ।
सरदी, गरमी, सुख, दुख उसका,
मानापमान समान हुआ ॥७॥

तृप्त हुआ जो ज्ञान-अनुभव से,
और जितेन्द्रिय अविचल है।
योगी है वह सम समझा जो;
सोना मिट्टी पत्थर है ॥८॥

उदासीन मध्यस्थ यही दो,
सुहृद शत्रु हितैषी में।
वही श्रेष्ठ है जिसने समझा,
बन्धु साधु सम पापी में ॥९॥

चित् थिर कर वासना तजे जो,
योगी एकाकी रह के।
सतत लगावे मन समाधि में,
त्याग संग्रहों का करके ॥१०॥

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥१४॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्ति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

वहुत न नीचा, बहुत न ऊंचा,[1]
हो पवित्र स्थान जहां।
मृगचर्म कुशा औ पट पर,
एक विछा आसन अपना ॥११॥

वहां बैठकर मन संचित कर,[2]
औ निज मन वश में करके।
आत्मशुद्धि के लिए तपस्वी,
खुद ही योगाभ्यास करे ॥१२॥

धड़-गर्दन सिर एक सीध में,[3]
अचल रखे और थिर रह कर।
इधर-उधर विन देखे अपने,
नासा पर ही आंखें कर ॥१३॥

पूर्णशान्ति से निर्भय होकर,[4]
मन को मारे दृढ़ रहकर।
धरे ध्यान योगी मेरा ही,
ईश परायण खुद होकर ॥१४॥

हरदम आत्मा इसी भांति जो,
परमात्मा में करता है।
वह योगी निज चित् अधीन कर,
मोक्ष मुझी में पाता है ॥१५॥

खाता है जो ठूंस-ठूंस कर,
या जो भोजन तजता है।
ज्यादा सोता जगता है जो,
योग न उनको मिलता है ॥१६॥

१-४. हर धर्म में अलग-अलग पूजा पद्धति बतायी गयी है—इस सन्दर्भ में कुर्आन मजीद में बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया गया है। देखें, कु० म० सूरह-२, आयत-१४८

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते।
निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

यथा दीपो निवातस्थोनेंगते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

भोग विहार अपर कर्मों में,
सोने में और जगने में।
जो मनुष्य परिमित रहता है,
योग लगा दुख हरने में ॥१७॥

भली-भांति मन नियमवद्ध जव,
थिर आत्मा में होता है।
हर इच्छा से निस्पृह मानव,
योगी तव कहलाता है ॥१८॥

वायु-हीन थल में रखा ज्यों,
दीपक निश्चल रहता है।
सावधान ही आत्मयोग कर,
योगी निश्चल रहता है ॥१९॥

योगों से अंकुश में आया,[1]
मन को मिलती शान्ति जहां।
आत्मा को आत्मा से जाने,
होते मानव तुष्ट जहां ॥२०॥

केवल है जो बुद्धिग्राह्य औ[2]
इन्द्रिय से है परे परे।
उस अनन्त सुख का अनुभव कर,
नर उससे वंचित न रहे ॥२१॥

और जिसे पा लेने पर वह,[3]
दूजा लाभ नहीं चाहे।
जिसमें थिर रह महादुखों से,
कहीं न डग मग हो भागे ॥२२॥

१-३. इन श्लोकों में ईश्वर के प्रति अटूट आस्था की बात कही गयी है। ऐसे ही आस्थावान व्यक्ति को इस्लाम की भाषा में मुसलमान कहा गया है।—इस कथन की पुष्टि हेतु इस्लाम प्रवेशिका अवश्य पढ़ें।

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ।।२३।।

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ।।२४।।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ।।२५।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चंलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ।।२६।।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ।।२७।।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते ।।२८।।

सर्वभूतस्थमाऽमानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ।।२९।।

दुख प्रसंग से रहित दशा का,
नाम योग की सीमा है।
बिन ऊबे निश्चयपूर्वक यह,
योग साधना मिलना है ॥२३॥

मन से पैदा होने वाली,
सभी कामना को छोड़े।
मन से योगाभ्यास करें हर,
पक्षों से इन्द्रिय मोड़ें ॥२४॥

अचल बुद्धि से योगी खुद थिर,
धीरे-धीरे हो जाए।
मन को डाले आत्मा में ही,
अन्य विचार न हो पाए ॥२५॥

जहां-जहां चंचल मन भागे,
वहां-वहां से हर योगी।
उसे नियम में लाकर अपने,
वश में कर ले तब योगी ॥२६॥

भली-भांति थिर जिसका मन है,
और हो गये शान्त विकार।
ब्रह्म भूत निष्पापी योगी,
को सुख मिलता बारम्बार ॥२७॥

जो आत्मा के साथ निरन्तर,
अन्वेषण ही करते हैं।
पाप रहित वह योगी सुख से,
ब्रह्म रूप पा लेते हैं ॥२८॥

सभी ओर समदर्शी योगी,
खुद में देखे भूतों को।
और सभी भूतों में देखे,
योगी मानव अपने को ॥२९॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।३०।।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।३१।।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।।३२।।

अर्जुन उवाच

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिंस्थिराम् ।।३३।।

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।।३५।।

सभी जगह औ सब में मुझको,
जो भी देखा करता है।
इर्द-गिर्द मैं उसके रहता,
वह भी मेरे रहता है ॥३०॥

मुझमें लीन हुआ जो योगी,
भूतमात्र वासी मुझको।
भजता रहता जिस स्वरूप में,
हर पल पाता है मुझको ॥३१॥

हे, अर्जुन ! मानव जो खुद-सा,[1]
सब को देखा करता है।
श्रेष्ठ गिना जाता वह योगी,
सुख-दुख सम जो रखता है ॥३२॥

अर्जुन बोला

मधुसूदन ! यह साम्य योग जो,
अभी आपने समझाया।
मन की चंचलता के कारण,
स्थिर कभी नहीं पाया ॥३३॥

क्योंकि कृष्ण ! मन चंचल ही है,
मथ कर रखता मानव को।
और बड़ा बलवान, वायु-सा,
कठिन दबाना है उसको ॥३४॥

श्रीभगवान बोले

महाबाहु, यह सच है यह मन,
चंचल होने के कारण।
मुश्किल से वश में होता है,
अभ्यासों से निस्तारण ॥३५॥

---

१. कुर्आन मजीद में भी यही बात कही गयी है—
"इनल्लाह युहिब्बल मुहसनीन"—सचमुच अल्लाह उन्हीं को प्यार करता है जो दूसरों को अपने जैसा ही समझ कर उसके साथ नेकी करते हैं।
—कुर्आन

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥३६॥

अर्जुन उवाच

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति॥३७॥

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।
अप्रतिष्ठोमहाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि॥३८॥

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्यु पपद्यते॥३९॥

श्रीभगवानुवाच

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति॥४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः
शुचीनां श्रीमतां गेहे गोयभ्रष्टोऽभिजायते॥४१॥

मत मेरा है जिसका भी मन,
नहीं रहा अपने वश में।
उसके खातिर बहुत कठिन है,
योग साधना करने में॥

यत्नवान है जो, जिसका मन,
अपने वश में रहता है।
हर उपाय के द्वारा ही वह,
योग साधना करता है॥३६॥

अर्जुन बोला

यत्न मन्द होने के कारण,
योग भ्रष्ट हो जाता है।
पर श्रद्धा वाला जो, मोहन,
कैसे गति को पाता है॥३७॥

योग भ्रष्ट जो ब्रह्म मार्ग से,
है भटका हे मनमोहन!
उभय भ्रष्ट हो नष्ट तो नहीं,
हो जाता है उसका मन॥३८॥

हैं समर्थ मन मोहन जी, खुद,
मेरा संशय दूर करें।
नहीं आप सम सक्षम दूजा,
जो संशय को दूर करे॥३९॥

श्रीकृष्ण बोले

लोक और परलोक में होता,
नाश नहीं ऐसे जन का।
पार्थ, नहीं होती है दुर्गति,
पुण्यवान मन है जिनका॥४०॥

पुण्यवान लोकों को पाकर,
वहीं पुण्य तक रहता है।
शुचि साधन वाले घर में फिर,
सुख से पैदा होता है॥४१॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ।।४२।।

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूयःसंसिद्धौ कुरुनन्दन ।।४३।।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ।।४४।।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्विषः ।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ।।४५।।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।४६।।

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ।।४७।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ।।

या वह लेता जन्म अवनि पर,
ज्ञानवान योगी कुल में।
पार्थ जन्म, दुर्लभ है ऐसा,
लोकों के ऊंचे कुल में ॥४२॥

वहां उसे संयोग बुद्धि सब,
पूर्व जन्म के मिलते हैं।
मोक्ष के लिए वहीं से बढ़े,
जहां सुलभ सब होते हैं ॥४३॥

पूर्वाभ्यासों के कारण ही,
योग ओर वह बढ़ता है।
वेद उक्त जिज्ञासु कर्म फल,
से ज्यादे फल आता है ॥४४॥

यत्न लगन से करता योगी,
मुक्त पाप से रहता है।
हर जन्मों से शुद्ध हुआ फिर,
उत्तम गति वह पाता है ॥४५॥

तपस्वियों से बढ़कर योगी,
ज्ञानी से भी ज्ञानी है।
हे अर्जुन ! तू योगी बन जो,
श्रेष्ठ कर्मकांडी से है ॥४६॥

सभी योगियों में मेरा मन,
श्रेष्ठ उसे ही कहता है।
मुझमें ही मन पिरो मुझे ही,
जो श्रद्धा से भजता है ॥४७॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्री कृष्णार्जुन-संवाद में आत्मसंयमयोग नामक षष्ठ अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद
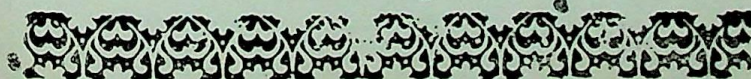
सप्तमोऽध्यायः

अथ सप्तमोऽध्यायः

ज्ञान-विज्ञान योग

श्रीभगवानुवाच

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥१॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

सातवां अध्याय

ज्ञान-विज्ञान योग

श्रीभगवान बोले

मुझमें ही मन पार्थ, पिरोकर,
औ मेरा आश्रय लेकर।
मुझे योग से कैसे; कैसे,
समझेगा सुन चित देकर ॥१॥

अनुभव से भरपूर ज्ञान यह,
पूर्ण रूप से कहूं तुझे।
नहीं लोक में और बचे कुछ,
इसे जान लेने ही से ॥२॥

लोग हजारों में से कोई,
यत्न सिद्धि का करता है।
इन सिद्धों में से कोई ही,
मेरा रूप समझता है ॥३॥

क्षिति जल पावक गगन वायु मन,
अहं बुद्धि जो मेरी है।
यही आठ जो प्रकृति ,हमारी
यही तत्त्व बस मेरी है ॥४॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥५॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥६॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥७॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु॥८॥

पुण्योगन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु॥९॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्॥१०॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥११॥

यही हुई अपरा प्रकृति और,
इससे ऊंची प्रकृति परा।
महाबाहु, जो जीव रूप है,
उस पर ही यह जगत चला ॥५॥

भूतमान पैदा का कारण,
तू इन दोनों को जानो।
अखिल जगत पैदा औ लय का,
कारण हूं यह भी जानो ॥६॥

हे अर्जुन ! मुझसे कुछ ऊंचा,
और दूसरा कहीं नहीं।
धागे में मनके जैसे सब,
जगत पिरोया मुझमें ही ॥७॥

हे कुन्ती के सुत ! जो जल में,
रस है वह सब मैं ही हूं।
सूर्य चन्द्र में तेज हूं मैं ही,
ओम् वेद में मैं ही हूं ॥८॥

हूं सुगन्ध मैं ही अवनी में,
तेज अग्नि में मैं ही हूं।
सभी जीव का जीवन मैं हूं,
तपकर्ता का तप भी हूं ॥९॥

पार्थ ! सनातन हर जीवों का,
बीज मुझे ही जानो तुम।
प्रज्ञावानों की प्रज्ञा हूं,
चमक तेज में जानो तुम ॥१०॥

राग रहित बलवान काम का,
बल हे अर्जुन ! मैं ही हूं।
धर्म समर्थन करने वाला,
काम भूत में मैं ही हूं ॥११॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

हैं जो सात्त्विक भाव राजसी,
और तामसी गुण तीनों।
मुझसे है उत्पन्न, जान पर,
मुझे नहीं इनमें जानो ॥१२॥

और इन्हीं त्रिगुणी भावों से,
जग यह मोहित रहता है।
इसीलिए इस जग से ऊपर,
मुझको नहीं समझता है ॥१३॥

है मेरी इन तीन गुणों की,
माया से मुश्किल बचना।
पर मेरी जो शरण ले लिया,
उसका ही होता तरना ॥१४॥

मूढ़ नीच दुष्कर्मी सब जो,
मेरी शरण नहीं आते।
भाव आसुरी वाले हैं सब,
ज्ञान हीन हैं रह जाते ॥१५॥

हे अर्जुन ! बस चार तरह के,
लोग मुझे भजने वाले।
दुःखी और अभिलाषी, ज्ञानी,
कुछ इच्छा रखने वाले ॥१६॥

इनमें हरदम समभावी जो
एक ईश को भजते हैं।
उत्तम ज्ञानी वही लोग हैं,
वे ही मेरे अपने हैं ॥१७॥

भक्त सभी ये अच्छे हैं पर,
आत्मा है ज्ञानी मेरा।
ज्ञानी मेरा आत्मा है बस,
ऐसा ही है मत मेरा ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥१८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥१९॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥२०॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥२१॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते।
लभते च ततः कामान्मयैवविहितान्हि तान्॥२२॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥२३॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

क्योंकि उत्तम पद ही नहीं है,
सिवा मुझे पा लेने के।
यही जान कर योगी रहता,
मेरा आश्रय ले ले के ॥१८॥

बाद कई जन्मों के ही वह,
ज्ञानी मुझको पाता है।
हैं महान् को दुर्लभ जो सब,
वासुदेवमय ज्ञाता है ॥१९॥

हरा गया है ज्ञान उन्हीं का,
मन की हर इच्छाओं से।
अपनी ही इच्छा से हैं वे,
शरण अन्य देवताओं के ॥२०॥

जो-जो नर जिस-जिस स्वरूप की,
भक्ति चाहता श्रद्धा से।
उसी रूप को दृढ़ करता हूं,
जिसमें उसकी इच्छा है ॥२१॥

श्रद्धा से उस उस स्वरूप की,
वह आराधना करता है।
जो उससे मेरी निर्मित निज,
इच्छा पूरी करता है ॥२२॥

अल्पज्ञों को जो फल मिलता,
नाशवान वह है होता।
सुरों के भजने वाले सुर को,
मेरा भक्त मुझे पाता ॥२३॥

मेरे अनुपम अविनाशी जो,
नहीं रूप का ज्ञाता है।
इन्द्रियातीत मुझे अज्ञानी,
इन्द्रियगम्य बताता है ॥२४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥

प्रकट नहीं हूं सभी के लिए,
आवृत अपनी माया से।
मुझ अव्यय को मूढ़ जगत यह,
जान ही नहीं पाया है॥२५॥

हैं जो प्राणी और हुए जो,
या जो होने वाले हैं।
मैं रखता हूं ज्ञान, वे नहीं,
मुझे जानने वाले हैं॥२६॥

पार्थ ! द्वेष इच्छा से जो भी,
सुख-दुःख होने वाले हैं।
इसी द्वन्द्व मोहों में जग के,
प्राणी रहने वाले हैं॥२७॥

हुए अन्त पापों के जिनके,
पुण्यवान जन ऐसे हैं।
मुक्त द्वन्द्व मोहों से हैं वे,
दृढ़ हो मुझको भजते हैं॥२८॥

जो मेरा आश्रय लेकर हैं,
जरा मरण से मुक्त हुए।
अखिल कर्म अध्यात्म ब्रह्म सब,
के ज्ञाता बस वही हुए॥२९॥

अधिभूत और अधिदैव सहित।
अधियज्ञ मुझे जो जानेगा।
अन्तकाल में समत्व पा कर,
मुझको ही पहचानेगा॥३०॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में ज्ञान विज्ञान योग नामक सप्तम अध्याय समाप्त॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

अथाष्टमोऽध्यायः

अथाष्टमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥१॥

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥३॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥४॥

आठवां अध्याय

अक्षर ब्रह्म योग

अर्जुन बोला

पुरुषोत्तम, वह ब्रह्म भला क्या,
देह किसे कह सकते हैं।
अधिभूत क्या, अधिदेव क्या औ,
कर्म किसे कह सकते हैं।।१।।

और नियामक देह बीच जो,
कौन है कैसा मधुसूदन।
मृत्यु काल में संयमी कैसे,
जानेगा हे अरिसूदन।।२।।

श्रीभगवान बोले

अविनाशी सर्वोत्तम है जो,*
ब्रह्म वही कहलाता है।
है सत्ता से भूतों में जो,
वह स्रष्टा कहलाता है।।३।।

नाशवान अधिभूत रूप है,
जीव रूप अधि दैवत है।
इस तन के अधियज्ञ जीव को,
शुद्ध यज्ञ से निर्मल है।।४।।

* ठीक यही बात अल्लाह के लिए कुर्आन मजीद में कही गयी है, देखें—कु० म० पारा-७, सूरह-६, आयत-१०१ में।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।५।।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ।।६।।

तस्मात्सर्वेषु कालेपु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ।।७।।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ।।८।।

कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।९।।

अन्तकाल में याद मुझे कर,
देह त्याग जो करता है।
इसमें कुछ सन्देह नहीं वह,
मेरा ही पद पाता है।।५।।

कुन्ती सुत, जिस-जिस स्वरूप को,*
नित मानव भजता रहता।
वही अन्त में भजता है औ,
उसी रूप को है पाता।।६।।

अत: मुझे ही याद कर सदा,
जूझो निज कर्मों में ही।
तू निश्चय मुझको पायेगा,
इसमें कुछ सन्देह नहीं।।७।।

पार्थ, चित्त अभ्यास में करे,
थिर जो हरदम रहता है।
चिन्तन करता परम पुरुष का,
परम पुरुष ही पाता है।।८।।

फिर मन से जो अन्त काल में,
भक्तियुक्त भी हो करके।
और योगबल से भृकुटी के,
प्राण बीच में ही करके।।९।।

* किन्तु आश्चर्य की बात है कि शायद ही कोई मुसलमान भगवद्गीता पढ़ा हो; श्लोक संख्या ५ से १० तक ध्यान से देखा जाए, हर सच्चा मुसलमान पूरी निष्ठा से उक्त उपदेशों का पालन करता है। कहने का आशय यह है कि इस्लाम में पांच वक्त की नमाज इसीलिए फर्ज (आवश्यक) की गयी है ताकि हर पल इस अभ्यास से अल्लाह की याद दिलो-दिमाग पर छायी रहे और मरते वक्त सिर्फ अल्लाह की ही याद आये और मोक्ष की प्राप्ति हो। सम्भवत: इसी दृढ़ विश्वास के कारण इस्लाम में पुनर्जन्म का स्थान नहीं है, इसी दृढ़ निश्चयता के कारण ही दावे के साथ मोक्ष (जन्नत) दिलाने का वायदा किया गया है, क्योंकि इस्लाम का अर्थ ही होता है 'समर्पण'। जो व्यक्ति अल्लाह के प्रति समर्पित है, उसका पुनर्जन्म कैसे हो सकता है? वह तो जन्नती होगा ही।

प्रयाणकाले मनसाचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१३॥

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥१४॥

सबके पालन हार नियन्ता,
औ सर्वज्ञ पुरातन है।
अचित्य सूर्य-सा तेजस्वी औ,
तम गुण से उच्चाटन है॥

परमपुरुष परमेश्वर को ही,
याद नित्य जो करता है।
सच कहता हूं हे अर्जुन वह,
उसको ही मिल जाता है॥१०॥

वेदों के ज्ञाता सब मिलकर,
अक्षर उनको कहते हैं।
वीतराग मुनिजन प्रवेश उस,
अक्षर में ही करते हैं॥

जिसको पाने की इच्छा से,
ब्रह्मचर्य से रहते हैं।
उस पद का वर्णन समास में,
तुम से हम यों करते हैं॥११॥

रोक इन्द्रियों के द्वारों को,
और हृदय में मन को कर।
मस्तक में निज प्राण धरे औ,
समाधिस्थ वह खुद होकर॥१२॥

ओम् ब्रह्म उच्चारण कर जो,
चिन्तन मेरा करता है।
देह त्याग कर वही पुरुष तब,
उत्तम गति को पाता है॥१३॥

अमिल वृत्ति से पार्थ सदा जो,
चिन्तन मेरा करता है।
नित्ययुक्त वह योगी मुझको,
सहज रूप में पाता है॥१४॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।१५।।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।१६।।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ।।१७।।

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ।।१८।।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ।।१९।।

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ।।२०।।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।२१।।

वही महात्मा परम सिद्धि पा,
फिर मुझको पा जाते हैं।
मुक्त हुए दुख के घर से वे,
जन्म नहीं फिर पाते हैं॥१५॥

ब्रह्म लोक क्या सभी लोक फिर,
फिर के आने वाले हैं।
अर्जुन मुझको पाने वाले,
कभी न आने वाले हैं॥१६॥

ब्रह्मा जी का एक दिवस ही,
युग हजार तक होता है।
वही निशा का भी होता है,
जाने जो भी ज्ञाता है॥१७॥

ब्रह्मा का दिन हो जाने पर,
व्यक्त सभी हो जाते हैं।
और रात पड़ जाने पर ही,
उनके परलय होते हैं॥१८॥

पार्थ ! यही समुदाय जीव का,
इसी तरह पैदा होकर।
रातों में लय होता इनका,
पैदा दिन के होने पर॥१९॥

अव्यक्तों से परे सनातन,
अलग भाव निर्गुण का है।
जीव नाश हो जाने पर भी,
नष्ट नहीं ये होता है॥२०॥

वह अव्यक्त अक्षर अविनाशी,
उत्तम गति कहलाता है।
ये पाने के बाद जनों का,
जन्म नहीं फिर होता है॥२१॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥२४॥

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासादक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥२६॥

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव
दानेषु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा
योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-सवादे अक्षरब्रह्मयोगो नामाष्टमोऽध्यायः ॥

अर्जुन ! पुरुषोत्तम का दर्शन,
अमिल भक्ति से होते हैं।
भूतमात्र इसमें ही रहते,
व्याप्त उसी से होते हैं॥२२॥

योगी मर कर तर जाते सब,
पुनर्जन्म हैं पाते जब।
यही काल है कहता हूं जो,
सुनो ध्यान से भरतर्षभ॥२३॥

षष्ठ माह जब उत्तरायण के,
शुक्ल पक्ष जो दिन होते।
अग्नि ज्योति जब उठे, मरें जो,
वही ब्रह्म को हैं पाते॥२४॥

धूमरात्रि औ कृष्ण पक्ष में,
मास छहों दक्षिणायन के।
इसमें मर कर ज्योति चन्द्र पा,
फिर-फिर जीते मर-मर के॥२५॥

ज्ञान और अज्ञान मार्ग ये,
परम्परा से चल आये।
अज्ञानी को पुनर्जन्म है,
मोक्ष ज्ञान से मिल जाये॥२६॥

इन मार्गों के ज्ञाता योगी,
मोह नहीं करता अर्जुन।
योग युक्त सर्वदा रहो तुम,
पार्थ हमारी बातें सुन॥२७॥

वेद यज्ञ तप दोनों में जो,
पुण्य फलों को पाता है।
पार सभी को करके योगी,
आदि श्रेष्ठ पद पाता है॥२८॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्री कृष्णार्जुन संवाद में अक्षरब्रह्मयोग नामक पंचम अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

नवमोऽध्यायः

अथ नवमोऽध्यायः

राजविद्याराजगुह्य योग

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ।।१।।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।२।।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।३।।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।४।।

नौवां अध्याय

राजविद्याराजगुह्य योग

नहीं अवज्ञा तुझमें है इस,
लिए गुह्य-से-गुह्य ज्ञान।
अनुभव युक्त कहूंगा तुझसे,
जिससे हो तेरा कल्यान ॥१॥

विद्याओं में वह राजा है,
गूढ़ वस्तुओं में भी है।
यह प्रत्यक्ष औ पवित्र विद्या,
श्रेष्ठ धर्म अविनाशी है ॥२॥

बिन श्रद्धा जो धर्मों में है,
मुझे नहीं वे पाते हैं।
और मृत्युमय जगत मार्ग में,
फिर-फिर ठोकर खाते हैं ॥३॥

व्यक्त रहित मेरे स्वरूप से,
सर्व जगत् है भरा हुआ।
है निर्भर मुझ पर हर प्राणी,
मैं तो उस पर नहीं रहा ॥४॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ।।५।।

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ।।६।।

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ।।७।।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।।८।।

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ।।९।।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।।१०।।

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ।।११।।

मुझमें प्राणी नहीं बसा है,
ऐसा भी कह सकता हूं।
देख योग जग पालक हूं पर,
नहीं जीव में रहता हूं ॥५॥

यथा गगन में विचरण करता,
सभी ओर ये पवन महा।
मैं भी वैसे ही रहता हूं,
हर प्राणी में सभी जहां ॥६॥

सभी प्रकृति में लय होते हैं,
हर प्राणी कल्पान्तर में।
कल्प शुरू होने पर अर्जुन,
इन प्राणी को रचता मैं ॥७॥

प्रकृति अधीन सभी प्राणी को,
मैं ही अपनी माया से।
पैदा करता बार-बार हूं,
यही कार्य बस मेरा है ॥८॥

सुनो ! धनंजय मुझे कर्म ये,
नहीं बांध कर रखते हैं।
उदासीन हूं, मैं इन सब में,
नहीं खींच ये सकते हैं ॥९॥

मुझ पर निर्भर जगत चराचर,
प्रकृति जिन्हें पैदा करती।
इसी हेतु ये दुनिया अर्जुन,
घट-मेंढक-सी है फिरती ॥१०॥

भूत महेश्वर मुझे मूढ़जन,
समझ नहीं ही पाते हैं।
औ तनधारी मुझ नर की ये,
सभी अवज्ञा करते हैं ॥११॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥१२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥१३॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्युक्ता उपासते॥१४॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्॥१५॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम्॥१६॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च॥१७॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥१८॥

व्यर्थ आस, औ व्यर्थ धर्म,
औ व्यर्थ ज्ञान से अज्ञानी।
आश्रय ले आसुरी वृत्ति का,
करते रहते मनमानी ॥१२॥

किन्तु पार्थ, वे महान् आत्मा,
देव रूप जो होते हैं।
मूलभूत अविनाशी मुझको,
जान मुझे ही भजते हैं ॥१३॥

यत्नशील दृढ़ मत वाले सब,
मुझे निरन्तर भजते हैं।
मुझे भक्ति से नमस्कार कर,
ध्यान हमारा धरते हैं ॥१४॥

और लोग अद्वैत दूसरे,
द्वैत रूप से मुझको ही।
बहुत रूप सब कहीं जानकर;
भजते रहते मुझको ही ॥१५॥

यज्ञ और संकल्प यज्ञ का,
पितृयज्ञ भी मैं ही हूं।
मन्त्रौषधि यज्ञाहुति एवं
अग्नि-हवन सब मैं ही हूं ॥१६॥

पितृ-मातृ मैं और पितामह,
धारण करता मैं ही हूं।
ज्ञान योग्य ओंकार शुद्ध ऋक्,
यजुर् साम सब मैं ही हूं ॥१७॥

गति पोषक हूं सबका द्रष्टा,
हित कर्त्ता औ स्वामी हूं।
आश्रय, निवास, उत्पत्ति, नाश,
औ बीज रूप सब मैं ही हूं ॥१८॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदासच्चाहमर्जुन ।।१९।।

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देव भोगान् ।।२०।।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ।।२१।।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।२२।।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।

मैं ही तपता सूर्य रूप में,
दृष्टि रोक कर रखता हूं।
सदसत् रूप मृतामृत हूं सब,
पैदा मैं ही करता हूं ॥१९॥

तीन वेद कर्मों के कर्त्ता,
सोम पिये निष्पापी हैं।
यज्ञों द्वारा मुझे पूज कर,
स्वर्ग लोक-अभिलाषी हैं॥

भोग-भोगते दिव्य स्वर्ग में,
पा पवित्र सुरलोक वही।
वैदिक कर्मों के फल में है,
देती तव आनन्द मही ॥२०॥

उस विशाल सुर लोक भोग कर,
पुण्य नष्ट हो जाने पर।
मृत्यु लोक में वे आते हैं,
और यहां फिर आने पर॥

तीन वेद कर्मों के कर्त्ता,
फल की इच्छा करते हैं।
वे फिर अपने जन्म-मरण में,
चक्कर काटा करते हैं॥२१॥

अमिल भाव से मुझे लोग जो,
भजते चिन्तन करते हैं।
उनका मैं हर भार उठाता,
रत मुझमें जो रहते हैं॥२२॥

हे अर्जुन जी, जो श्रद्धा से,
अन्य देव को भजते हैं।
हो विधि रहित भले ही लेकिन,
सब मुझको ही भजते हैं॥२३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥२४॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥२५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥२६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥२७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥२८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥२९॥

यज्ञों का भोक्ता हूं मैं ही,
स्वामी मुझको कहते हैं।
सही रूप जो नहीं जानते,
इसीलिए वे गिरते हैं।।२४।।

देवता पूजनकर्ता जन सब,
देव लोक ही पाते हैं।
और पितर पूजन कर्त्ता तो,
पितृ लोक ही जाते हैं।।

भूत प्रेत पूजन कर्ता सब,
उसी लोक को पाते हैं।
और मुझे भजने वाले बस,
मेरे पद को पाते हैं।।२५।।

पत्र फूल-फल जल जो मुझको,
भेंट भक्ति से है करता।
यत्नशील मानव-अर्पित को,
मैं ही हूं सेवन करता।।२६।।

अर्जुन ! जो तुम करे, खाय औ,
होम हवन में जो करना।
तपोदान जो करना मुझको,
ही अर्पण सब कर देना।।२७।।

फिर तेरा शुभ अशुभ फलों के,
कर्म-बन्ध छुट जाएगा।
फल तज, सम हो, जन्म-मरण से,
मुक्त मुझे ही पायेगा।।२८।।

सम भावों से हर प्राणी में,
अर्जुन, मैं ही रहता हूं।
प्रिय-अप्रिय तो कोई नहीं पर,
भक्तों में मैं रहता हूं।।२९।।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥३०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥३२॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥

भारी दुर्जन भी मुझको ही,
भक्ति भाव से भजता है।
उन्हें मानना साधु चाहिए,
जो संकल्प से रहता है ॥३०॥

धर्मात्मा वह हो जाता औ,
शान्ति निरन्तर पाता है।
पार्थ, जान, मेरे भक्तों का,
नाश ही, नहीं होता है ॥३१॥

फिर अर्जुन जो पाप योनि हो,
वैश्य शूद्र या नारी हो।
वही परम गति पा जाता है,
जो मेरा आभारी हो ॥३२॥

महि सुर औ राजर्षि जनों में,
पुण्य कर्म जो करता है।
वही भक्त है श्रेष्ठ हमारा,
प्रिय भी मुझको लगता है ॥३३॥

मुझमें दे मन भक्त बनो तुम,
निमित्त मेरे यज्ञ करो।
करो परायण मुझमें खुद को,
फिर मुझको ही नमन करो ॥३४॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में राजविद्याराजगुह्य योग नामक नौवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

दशमोऽध्यायः

अथ दशमोऽध्यायः

विभूति योग

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो श्रृणु मे परमं वचः।
यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ।।१।।

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ।।२।।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३।।

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः।
सुखं दुःखं भावोऽभावो भयं चाभयमेव च ।।४।।

दसवां अध्याय

विभूतियोग

[सातवें, आठवें और नौवें अध्याय में भक्ति आदि का निरूपण करने के बाद भगवान अपनी अनन्त विभूतियों का कुछ दिग्दर्शन भक्त के लिए कराते हैं।]

श्री भगवान बोले

अर्जुन मेरा परम वचन सुन,
जो हितकारी होते हैं।
तुम प्रिय जन हो इसीलिए हम,
वचन तुम्हें ये कहते हैं ॥१॥

सुरगण और महर्षि जनों को,
मेरा कुछ भी ज्ञान नहीं।
उनके आदि का कारण क्योंकि,
सभी तरह से हूं मैं ही ॥२॥

मृत्यु लोक में रहता जो भी,
ज्ञानी मुझको लोकों के।
अनादि अजन्मा ईश जानकर,
मुक्त हुए हर पापों से ॥३॥

जन्म मृत्यु भय सुख दुःख शम दम,
ज्ञान बुद्धि संमोह क्षमा।
सत्य अहिंसा अभय आदि हैं,
वहुत और जो अन्य यहां ॥४॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।।५।।

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ।।६।।

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ।।७।।

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।८।।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।९।।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।१०।।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।११।।

समता औ सन्तोष दान तप,
प्राणी में जो होते हैं।
यश अपयश औ अन्य भाव सब,
मुझसे ही बस होते हैं॥५॥

सप्तऋषि सनकादिक पहले,
फिर, मनु सब उत्पन्न हुए।
मेरे संकल्पों से ये सब,
फिर इनसे ये लोक हुए॥६॥

जो मेरी इस सत्य शक्ति का,
औ विभूति का ज्ञाता है।
इसमें कुछ सन्देह नहीं वह,
अविचल समता पाता है॥७॥

पैदा का कारण हूं सबका,
मुझसे ही सब चलते हैं।
समझदार जन यही जानकर,
मुझे भाव से भजते हैं॥८॥

मुझमें चित्त लगाने वाले,
प्राण अर्पण कर मुझमें ही।
मेरा बोध कराते रमते,
तुष्ट रहें सब मुझमें ही॥९॥

तन्मय मुझमें रहने वाले,*
मुझे प्रेम से भजते हैं।
उन्हें ज्ञान मैं ही देता हूं,
और मुझे वे पाते हैं॥१०॥

दयाभाव से उन पर उनके,*
दिल में ही मैं रहता हूं।
और ज्ञान की ज्योति जला कर,
उनका तम हर लेता हूं॥११॥

---

* कुर्आन मजीद में यही बात कही गयी है, देखें—पारा-२१, सूरह-३०, आयत-६९

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ।।१२।।

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ।।१३।।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ।।१४।।

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ।।१५।।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ।।१६।।

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ।।१७।।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ।।१८।।

अर्जुन बोला

परमधाम, परब्रह्म तुम्हीं हो,
हो पवित्र औ नित्य तुम्हीं।
आदि देव हो, जन्म रहित हो,
सर्व दृष्ट हो पुरुष तुम्हीं ॥१२॥

आप ही नहीं जग कहता है,
ऋषि महर्षि सब कहते हैं।
असित, व्यास, देवल, नारद भी,
ऐसा ही सब कहते हैं ॥१३॥

केशव जो कुछ कहा आपने,
सत्य उसे हमने माना।
देवता दानव दोनों ने ही,
रूप नहीं यह पहचाना ॥१४॥

हे पुरुषोत्तम जनक जीव के,
देव आप हैं देवों के।
जीवों के स्वामी हैं खुद ही,
ज्ञानी हैं हर ज्ञानों के ॥१५॥

इन लोकों में व्याप रहे हैं,
जिन विभूतियों से भगवन्।
वही दिव्य सारी विभूतियां,
मुझे सुनाएं हे भगवन् ॥१६॥

चिन्तन हरदम करके कैसे,
कृपा आपकी जान सकूं।
किन-किन रूपों में रहते हैं,
कैसे मैं पहचान सकूं ॥१७॥

योग शक्तियां औ विभूतियां,
जान सकूं दिल कहता है।
बार-बार ब्यौरा सुनकर भी,
तृप्त नहीं मन होता है ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१६॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

श्री कृष्ण बोले

पाण्डुश्रेष्ठ, अच्छा मैं अपनी,
मुख्य-मुख्य औ दिव्य सभी।
अन्तहीन प्यारी विभूतियां,
कहता हूं सुन तुमसे ही ॥१६॥

हर प्राणी के हिय में जो भी,
आत्मा है वह मैं ही हूं।
भूतमात्र के आदि अन्त हूं,
पार्थ, मध्य भी मैं ही हूं ॥२०॥

विष्णु सभी आदित्यों में हूं,
ज्योति सूर्य में जगमग हूं,
मरुतों में हूं मरीचि मैं ही,
चन्द्र-चन्द्र का चकमक हूं ॥२१॥
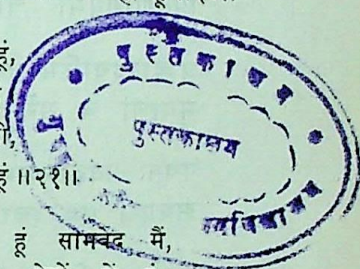
वेदों में हूं सामवेद मैं,
इन्द्र सभी देवों में हूं।
चेतन हूं मैं हर प्राणी में,
मन इन्द्रिय में मैं ही हूं ॥२२॥

सभी राक्षसों में कुबेर हूं,
शंकर सब रुद्रों में हूं।
मेरु पर्वतों में हूं मैं ही,
अग्नि सभी वसुओं में हूं ॥२३॥

मैं ही गुरु हूं पुरोहितों में,
कार्तिक सेनापतियों में।
सभी सरोवर में सागर हूं,
उत्तम हूं हर मतियों में ॥२४॥

महर्षियों में भृगु मैं ही हूं,
ओम् एक हूं वाणी में।
मैं यज्ञों में जाप यज्ञ हूं,
गिरिवर हूं जड़ प्राणी में ॥२५॥

अश्वथःत्सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः।
गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ।।२६।।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम्।
ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ।।२७।।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक्।
प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ।।२८।।

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम्।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ।।२९।।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम्।
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ।।३०।।

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी ।।३१।।

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ।।३२।।

नारद हूं देवर्षि जनों में,
पीपल हूं हर वृक्षों में।
बना चित्ररथ गन्धर्वों में,
श्रेष्ठ कपिल मुनि सिद्धों में ॥२६॥

मैं अश्वों में वाजि इन्द्र का,
ऐरावत गजराजों में।
अमृत से निकले ये दोनों,
राजा हूं हर मानव में ॥२७॥

प्रबल वज्र हूं हथियारों में,
कामधेनु हूं गायों में।
प्रजनयुक्त हूं कामदेव हूं,
वासुकि हूं हर सापों में ॥२८॥

जलचर में मैं वरुण रूप हूं,
शेष नाग हूं नागों में।
पितरों के मुखिया मैं ही हूं,
यम नियमन कर्त्ताओं में ॥२९॥

महाकाल गिनने वालों में,
भक्त शिरोमणि दैत्यों में।
पक्षिन में मैं गरुण रूप हूं,
सिंहराज हूं पशुओं में ॥३०॥

शस्त्रभृतों में परशुराम हूं,
पवन रूप पावनकर्त्ता।
मीनदलों में मगरमच्छ हूं,
नदियों में पावन गंगा ॥३१॥

सभी सृष्टि का आदि अन्त हूं,
मध्य जान लो मैं ही हूं,
विद्या में अध्यात्म रूप हूं,
सिद्धान्तों में मैं ही हूं ॥३२॥

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ।।३३।।

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।।३४।।

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ।।३५।।

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ।।३६।।

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ।।३७।।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति बिना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ।।३९।।

अकार हूं अक्षर समूह में,
द्वन्द्व समासों में मैं ही।
अविनाशी हूं महाकाल भी,
सभी ओर बस हूं मैं ही॥३३॥

मृत्यु सभी का और सृष्टि हूं,
नारी जाति में कीर्ति हूं।
मैं ही लक्ष्मी मेधा वाणी,
धृति क्षमा औ स्मृति हूं॥३४॥

सामों में मैं वृहत् साम हूं,
गायत्री हूं छन्दों में।
मार्गशीर्ष हूं सभी माह में,
औ वसन्त हूं ऋतुओं में॥३५॥

छलिनों में मैं द्यूत रूप हूं,
तेज सभी तेजों का हूं।
जय भी मैं हूं निश्चय भी मैं,
सात्त्विक मैं सत्त्वों का हूं॥३६॥

यादव कुल में वासुदेव हूं,
अर्जुन हूं मैं पांडव में।
मुनि जन में तो व्यास जान लो,
उशना हूं मैं कवियों में॥३७॥

और नीति जय अभिलाषी का,
दण्ड दमनकर्ता का हूं।
ज्ञानवान का ज्ञान जान लो,
मौन गुह्य बातों का हूं॥३८॥

हे अर्जुन, सुन हर प्राणी में,
बीज रूप बस मैं ही हूं।
नहीं चराचर मेरे बिन है,
जो कुछ हूं सो मैं ही हूं॥३९॥

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ।।४०।।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ।।४१।।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन।
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ।।४२।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिपत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ।।

सुनो परंतप अन्त नहीं है,
दिव्य शक्तियों की मेरी।
है यह एक मिसाल रूप जो,
देख रहीं आंखें तेरी ॥४०॥

है विभूति औ प्रभावशाली,
औ जो तेजस्वी जन हैं।
अंश तेज हैं वे सब मेरे,
बस मुझसे ही वे सब हैं ॥४१॥

क्या करना विस्तार जानकर,
इन विभूतियों का अर्जुन।
अंश मात्र से विद्यमान हूं,
जगत समूचे में यह सुन ॥४२॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन-संवाद में विभूतियोग नामक
दसवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद् गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

एकादशोऽध्यायः

अथैकादशोऽध्यायः

विश्वरूपदर्शन योग

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ।।१।।

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ।।२।।

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मान परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ।।३।।

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ।।४।।

ग्यारहवां अध्याय

विश्वरूपदर्शन योग

[इस अध्याय में भगवान् अपना विराट् स्वरूप अर्जुन को बतलाते हैं। भक्तों को यह अध्याय बहुत प्रिय है। इसमें दलीलें नहीं बल्कि केवल काव्य है। इस अध्याय का पाठ करते-करते मनुष्य थकता ही नहीं।]

अर्जुन बोला

गुह्य वचन निज सुना आपने,
मुझ अनाथ पर दया किया।
मन से निकले वचन आपके,
जिनसे मेरा मोह गया ॥१॥

उत्पत्ति और नाश प्राणियों,
का विस्तार सुना मैंने।
कमलनयन सुन लिया आपकी,
नित्य सभी महिमा मैंने ॥२॥

परमेश्वर जैसे अपना सब,
परिचय मुझको देते हैं।
वैसे ही हैं किन्तु लालसा,
दर्शन के भी होते हैं ॥३॥

अगर मानते हैं ये दर्शन,
मेरे खातिर मुमकिन हैं।
हे भगवन् ! बस दया करें औ,
नित्य रूप का दर्शन दें ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

संजय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥९॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।
सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥११॥

श्री कृष्ण बोले

पार्थ, देख यह रूप दिव्य जो,
शतों हजारों हैं मेरे।
हैं ये नाना भिन्न-भिन्न भी,
रंग और आकृति मेरे ॥५॥

अर्जुन, देखो आदित्यों को,
वसुओं रुद्रों मरुतों को।
और अश्विनी-सुत ये दोनों,
देखो अद्‌भुत रूपों को ॥६॥

मेरे तन में जगत् समूचा,
एक रूप में है देखो।
सभी चराचर जो चाहो सो,
आज वही सब तुम देखो ॥७॥

पर अपने तू चर्म-चक्षु से,
नहीं देख सकता मुझको।
मैं देता हूं दिव्य चक्षु फिर,
देख सकेगा तू सबको ॥८॥

संजय बोला

ऐसा कह प्रभु ने अर्जुन को,
ईश रूप तब दिखलाया।
अनुपम अद्‌भुत रूप देख कर,
अर्जुन का मन भर आया ॥९॥

वह अनेक मुख आंखों वाला,
और कई दर्शन वाला।
दिव्य-दिव्य आभूषण वाला,
दिव्य कई शस्त्रों वाला ॥१०॥

दिव्य सुगन्धित लेप लगे थे,
दिव्य वस्त्र औ मालाएं।
इसी तरह अद्‌भुत अनन्त था,
देव रूप क्या बतलाएं ॥११॥

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ।।१२।।

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ।।१३।।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ।
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत ।।१४।।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसंघान् ।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ।। १५।।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम् ।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ।।१६।।

एक साथ रवि तेज हजारों,
नभ में निकले हों जैसे।
फिर भी वह थे तुच्छ तेज जब,
श्रेष्ठ पुरुष के तेजों से ॥१२॥

देवाधिदेव के तन में सज्जित,
पाण्डव जी ने सब देखा।
खण्ड-खण्ड इस सकल जगत् को,
एक रूप में सब देखा ॥१३॥

चकाचौंध हो अर्जुन ने फिर,
झुका लिया सर कर जोड़ा।
औ आनन्दित पुलकित होकर,
मन मोहन से यह बोला ॥१४॥

अर्जुन बोला

सब देवों को देख रहा हूं,
देव आप ही के तन में।
भिन्न-भिन्न प्राणी समूह को,
देख रहा हूं इस तन में ॥१५॥

शोभ रहे हैं कमलासन पर,
देख रहा ब्रह्मा जी को।
सब ऋषियों को देख रहा हूं,
दिव्य देखता सर्पों को ॥

हाथ अनगिनत उदर नयन मुख,
औ अनन्त रूपों वाला।
आदि अन्त या मध्य नहीं है,
विश्व रूप देखा आला ॥१६॥

तेज पुंज हर ओर ज्योति है,
गदा चक्र औ मुकुट धरे।
कठिनाई से दिखने वाले,
बनवारी हैं छवि तेरे ॥

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च
तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।
पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ता-
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥१८॥

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-
मनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं
स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥१९॥

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि
व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं
लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥२०॥

अमी हि त्वां सुरसंघा विशन्ति
केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

दीप्त अनल या सूर्य सरीखे,
ज्योति अपरिमित दीख रहा।
प्रकाशमान हैं सभी दिशाएं,
ऐसे प्रभु को देख रहा ॥१७॥

अक्षर औ ज्ञातव्य आप को,
जग-निधान मन मान लिया।
अविनाशी हो पुरुष सनातन,
मैंने यह पहचान लिया ॥१८॥

आदि अन्त या मध्य न जिनका,
जिनकी शक्ति अपरिमित है!
सूर्य चन्द्र-सा दिव्य नयन है,
जिनका बाहु असीमित है॥

दीप्त अग्नि-सा मुख है जिनका,
जगत तेज से तपा रहा।
ऐसे ही बस आप दिख रहे,
जग जिनसे जगमगा रहा ॥१९॥

नभ अवनी के अन्तराल में,
फैले सभी दिशाओं में।
आप-आप ही व्याप रहे हर,
लोक पड़े शंकाओं में ॥२०॥

देवों का यह संघ आप में,
हैं प्रवेश कर रहे सभी।
कर जोड़े भयभीत हुए,
करते स्तुति दिख रहे सभी॥

मुनि सिद्धों के संघ जगत् का,
स्वस्ति गान कर रहे सभी।
सिर्फ आप का कई तरह यश,
गान सदा कर रहे सभी ॥२१॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या
विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसंघा
वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं
महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं
दृष्ट्वालोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं
व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् ।
दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितान्तरात्मा
धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो ॥२४॥

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि
दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।
दिशो न जाने न लभे च शर्म
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः
सर्वे सहैवावनिपालसंघैः ।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ
सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति
दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ।
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु
संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥२७॥

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः
समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।
तथा तवामी नरलोकवीरा
विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥२८॥

सूर्य रुद्र वसु विश्व देव सब,
यक्ष असुर गन्धर्व पितर।
सिद्ध साध्य अश्विनी कुमारों,
की विस्मित हो टिकी नजर ॥२२॥

हे प्रभु, बहुमुख आंख पेट औ,
हाथ पैर जांघों वाले।
रूप आपके देख भयंकर,
मुझसे व्याकुल हैं सारे ॥२३॥

जगमग करते नभ छूते मुख,
खुले कई रंगों वाले।
धैर्य शान्ति सब गया हमारा,
देख तेज नेत्रों वाले ॥२४॥

प्रलय काल की ज्वाला जैसे,
दिखा दाढ़ विकराल बदन।
दिशा ज्ञान सब गया हमारा,
अब प्रसन्न हों हे भगवन् ॥२५॥

संघ सहित सब राजाओं के,
भीष्म द्रोण कौरव सब हैं।
सूतपूत हैं कर्ण आदि औ,
सब मेरे योद्धा गण हैं ॥२६॥

सभी वेग से चले आ रहे,
मुख कराल इन दाढ़ों में।
कितने तो सिर चूर दिख रहे,
लगे आपके दांतों में ॥२७॥

यथा सिन्धु में दौड़े आते,
जल प्रवाह सब नदियों के।
तथा धधकते मुख में आते,
नर नायक हर लोकों के ॥२८॥

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा
विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोका-
स्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ता-
ल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं
भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥३०॥

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं
न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे
येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥३२॥

जले दीप में यथा पतंगे,
मरने दौड़े आते हैं।
वैसे ही हर लोग आपके,
मुख में आते दिखते हैं॥२६॥

हर लोकों को सभी ओर से,
दिखे निगलते आप रहे!
निगल-निगलकर सभी लोक को,
मुख ज्वाला से चाट रहे॥

उग्र आप के आभा से है,
सकल जगत जगमगा रहा।
हे भगवन्! हैं वही तेज जो,
अखिल जगत् को तपा रहा॥३०॥

उग्र रूप हैं कौन आप सो,
मुझसे कहिए खुश होकर।
सभी आप की लगन जान लूं
है इच्छा हे देवेश्वर॥३१॥

श्री भगवान् बोले

बढ़ा हुआ हूं काल लोक का,
सभी नष्ट करने वाला।
और यहां पर मैं तो अर्जुन,
लोक नाश करने आया॥

आये हैं जो हर सेना में,
योद्धा गण लड़ने वाले।
मना करें लड़ने से तो भी,
नहीं यहां बचने वाले॥३२॥

अतः खड़ा उठकर हो जाओ,
शत्रु जीतकर यश पाओ।
और सभी धन धान्य से भरा,
राज-भोग का सुख पाओ॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व
जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्वराज्यंसमृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।।३३।।

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च
कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा
युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ।।३४।।

संजय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य
कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं
सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ।।३५।।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ।।३६।।

मैंने तो बस पहले ही से,
इन्हें मार कर रखा है।
तू तो केवल कारण ही बन,
यश फल इसमें तेरा है ॥३३॥

द्रोण भीष्म औ कर्ण सहित सब,
जयद्रथ जैसे वीरों को।
इन्हें मार मैं पहले डाला,
लो अब मारो तुम इनको ॥

डर मत लड़ अब मार इन्हें तू,
विजय तुम्हें ही मिलनी है।
मरे हुए को मार गिराओ,
सोच नहीं कुछ करनी है ॥३४॥

संजय बोला

बातें सुनकर केशव की ये,
लगे कांपने कर जोड़े।
वन्दन करते डरते-डरते,
किरीटधर अर्जुन बोले ॥३५॥

अर्जुन बोले

श्याम, आपके कीर्तन करते,
खुशी जगत् जो होता है।
भक्ति आपके लिए लोक में,
उचित रूप से होता है ॥

सिद्धों के सारे समूह हैं,
नमन आप ही को करते।
इधर-उधर हैं असुर लोग सब,
भाग रहे भयभीत हुए ॥३६॥

अहो महात्मन्, सभी आपको,
नमस्कार क्यों नहीं करें।
आप आदिकर्त्ता हैं मोहन,
ब्रह्मा से भी आप बड़े ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।
अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥४०॥

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

हे अनंत प्रभु देव ईश औ,
जग निवास करने वाले।
हे अक्षर सद्-असद् आप ही,
और सभी से हैं न्यारे॥३७॥

आदि देव औ पुरुष पुरातन,
हैं निधान इस दुनिया के।
ज्ञाता और ज्ञातव्य आप ही,
परमधाम हैं दुनिया के॥

सबके आश्रयदाता हैं औ,
दिव्य ज्ञान रखने वाले।
व्याप रहे हैं आप जगत् में,
हे अनंत रूपों वाले॥३८॥

अनल वायु यम वरुण चन्द्र औ,
स्वयं प्रजापति हैं भगवन्।
हे प्रपितामह, बार-बार लें,
शतों हजारों नमो नमन॥३९॥

सर्व, आपको आगे-पीछे,
सभी ओर से नमो नमन।
सर्वधातृ हो सर्वशक्ति हो,
अखिल वीर्य वाले भगवन्॥४०॥

बिना आपकी महिमा जाने,
मित्र जान कर ही मैंने।
हे यादव, हे कृष्ण, सखा हे,
नाम लिया यूं ही मैंने॥

भूल-चूक या प्रेम से सही,
मुझसे अविनय काम हुआ।
मोद के लिए खेल-खेल में,
प्रभु का जो अपमान हुआ॥४१॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ।।४२।।

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ।।४३।।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ।।४४।।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ।।४५।।

और बैठते सोते खाते,
संगत में जो कहता हूं।
हे प्रभु ! मुझको क्षमा करें बस,
क्षमा-याचना करता हूं ॥४२॥

जड़ चेतन जग पिता आप हैं,
पूज्य श्रेष्ठ गुरुवर सबके।
नहीं आप सम जग में कोई,
अधिक भला क्या हो सकते ? ॥

अनुपमेय है शक्ति आपकी,
भगवन् तीनों लोकों में।
मुझ अनाथ पर दया करें प्रभु,
गिरा आपके चरणों में ॥४३॥

अंग नवाकर नमस्कार कर,
हाथ जोड़कर कहता हूं।
हों प्रसन्न हे पूज्य ईश अब,
यही निवेदन करता हूं ॥

देव, जिस तरह पिता पुत्र को,
सखा-सखा को सहन करें।
मेरे प्रिय होने के कारण,
वैसे मुझको सहन करें ॥४४॥

अनदेखा यह रूप आपका,
देख रोम सब सजग हुए।
मन भय से व्याकुल हो मेरे,
दिल-दिमाग सब विफल हुए ॥

अतः देव निज पहले का ही,
रूप मुझे अब दिखलाएं।
देव ईश हे जग निधान प्रभु,
मुझसे अब खुश हो जाएं ॥४५॥

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्त-
मिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं
रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥४७॥

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै-
र्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके
द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥४८॥

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य॥४९॥

संजय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा॥५०॥

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः॥५१॥

पूर्व भांति ही मुकुट, गदा औ,
चक्र लिये हों हाथों में।
प्रभु मेरी अब यही लालसा,
चतुर्भुजा बस दर्शन दें ॥४६॥

श्री भगवान बोले

अर्जुन तुझ पर ही प्रसन्न हो,
दिव्य शक्ति से सब अपनी।
केवल तुझको दिखलाया है,
लीला यह अद्‌भुत अपनी ॥

निज तेजोमय जगव्यापी औ,
परम आदि हर रूपों को!
मैंने तुझको सब दिखलाया,
अन्य नहीं देखे जिनको ॥४७॥

शास्त्र ज्ञान या दान यज्ञ से,
और वेद अभ्यासों से।
उग्र तपों से नहीं लोग ये,
रूप हमारा देख सके ॥४८॥

रूप भयंकर देख हमारा,
डरो नहीं मत घबराओ।
मोह छोड़कर वही देख लो,
शान्त चित्त अब हो जाओ ॥४९॥

संजय ने कहा

प्रभु ने अर्जुन से यह कह कर,
पूर्व रूप फिर दिखलाया।
भीत पार्थ को मिला दिलासा,
शान्त-मूर्ति जब दिखलाया ॥५०॥

अर्जुन बोला

सौम्य रूप मानव जब देखा,
लगा ठिकाने शान्त हुआ।
अहो जनार्दन, देख आपको,
अब मेरा मन चेत हुआ ॥५१॥

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्ट्वानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्ट्वानसि मां यथा ॥५३॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥

श्री कृष्ण बोले

दुर्लभ है यह रूप देखना,
जो कुछ तुमने देखा है।
जिसके खातिर सुर समूह भी,
प्रतिपल इच्छा करता है ॥५२॥

अभी किया जो दर्शन तूने,
अन्य नहीं कर सकते हैं।
नहीं दान तप वेद ज्ञान से,
इनके दर्शन होते हैं ॥५३॥

किन्तु पार्थ यह मेरा दर्शन,
और ज्ञान जो होते हैं।
होते हैं मुझमें प्रवेश जो,
परम-भक्ति से होते हैं ॥५४॥

हे पाण्डव जो सब कर्मों को,
मुझमें अर्पण करता है।
और परायण खुद रहकर भी,
परम भक्त वह बनता है ॥

भूतमात्र में द्वेषरहित रह,
राग-त्याग जो करता है।
सच कहता हूं हे अर्जुन वह,
भक्त मुझे ही पाता है ॥५५॥

श्रीमद् भगवद्गीता के श्री कृष्णार्जुन संवाद में विश्वरूप दर्शनयोग नामक ग्यारहवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

द्वादशोऽध्यायः

अथ द्वादशोऽध्यायः

भक्ति योग

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥२॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥३॥

बारहवां अध्याय

भक्ति योग

[पुरुषोत्तम के दर्शन अनन्य भक्ति से ही होते हैं। भगवान के इस वचन के बाद तो भक्ति का स्वरूप ही सामने आना चाहिए। यह बारहवां अध्याय सबको मूल रूप से कंठ कर लेना चाहिए। यह छोटे-से-छोटे अध्यायों में एक है। इसमें दिए हुए भक्त के लक्षण नित्य मनन करने योग्य है।]

अर्जुन बोला

इसी तरह जो भक्त आपका,
ध्यान निरन्तर धरते हैं।
और आपके अविनाशी सब,
नित्य रूप जो भजते हैं॥

औ उपासना सिर्फ आप ही,
की जो करते रहते हैं।
उन भक्तों में योगी किसको,
श्रेष्ठ किसे कह सकते हैं॥१॥

श्री भगवान् बोले

मैं उत्तम योगी कहता हूं,
उसको जो भी ध्यान धरे।
मुझमें ही मन लगा प्रेम से,
बस मेरा जो नाम भजे॥२॥

सभी इन्द्रियां वश में करके,
सब में प्रज्ञा सम करके।
अचल धीर अचिन्त्य रूप का,
मन-ही-मन चिन्तन करके॥३॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥४॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥५॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥६॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥७॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥८॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥९॥

और व्यक्त जो नहीं जगत् में,
वही रूप अविनाशी का।
वर्णन से जो परे ईश है,
वही सर्व जग व्यापी का॥

सभी तरह से उक्त नियम से,
जो उपासना करते हैं।
और भूतहित रत रहते जो,
वे ही मुझको पाते हैं॥४॥

जिनका मन अव्यक्त में लगा,*
कष्ट उन्हें ही होता है।
उस अमूर्त की गति को देही,
बड़े कष्ट से पाता है॥५॥

मुझमें तन्मय रह कर जो सब,
कर्म समर्पण कर मुझको।
बस मेरा ही ध्यान धरे जो,
हे अर्जुन, फिर मैं उसको॥६॥

मृत्यु रूप इस भव सागर से,
उसे पार कर लेता हूं।
बस जिनका भी चित्त पिरोया,
निज में देखा करता हूं॥७॥

निज मन मुझमें लगा हमेशा,
और बुद्धि रख दो मुझमें।
फिर मुझको निश्चय पाएगा,
सदा रहेगा फिर मुझमें॥८॥

कभी नहीं कर पाएगा थिर,
मन मुझमें यदि तू अपना।
फिर मुझको अप्रयास योग से,
पाने की इच्छा करना॥९॥

---

* कुर्आन मजीद पारा-१, सूरह-२, आयत-२, ३ के माध्यम से उस अव्यक्त पर निष्ठा रखने वालों के लिए बहुत ही अच्छी बातें कही गयी हैं।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥१२॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥

हे अर्जुन, अभ्यास योग भी,
अगर नहीं कर पायेगा।
कर्म मात्र अर्पण कर मुझमें,
तब भी मुझको पाएगा॥

और कर्म करते ही तेरा,
बहुत भला हो जायेगा।
हेतु हमारे कर्म कर सदा,
तुझे मोक्ष मिल जायेगा॥१०॥

और हमारे हेतु कर्म भी,
करने की है शक्ति नहीं।
यत्न हमेशा करते-करते,
त्याग कर्म फल सदा सभी॥११॥

ज्ञान श्रेष्ठ अभ्यास मार्ग से,
ज्ञान मार्ग से ध्यान बड़ा।
ध्यान मार्ग से भी हे अर्जुन,
कर्म फलों का त्याग बड़ा॥

अगर कर्म-फल त्याग करे तो,
अन्य शक्ति मिल जाती है।
यही कर्म-फल त्याग मात्र से,
सद्य शान्ति मिल जाती है॥१२॥

द्वेष हित हो भूतमात्र में,
सखा सरीखे हो जग में।
दयावान हो क्षमावान हो,
सम रहता जो सुख-दुःख में॥

अहंकार ममता से वंचित,
योगयुक्त संतोषी जो।
दमन किया हो सभी इन्द्रियां,
प्रज्ञा मुझमें जिसकी हो॥१३॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥

हरदम जिसका दृढ़ निश्चय हो,
मन अर्पण मुझमें जिसका।
वही भक्त बस प्रिय मेरा है,
वह मेरा है मैं उसका ॥१४॥

लोग नहीं भय जिनसे खाते,
नहीं लोग से भय जिनको।
हर्ष क्रोध भय दाह न जिनमें,
वही भक्त प्रिय है मुझको ॥१५॥

संकल्पों को जिसने त्यागा,
चिन्ता से हो दूर सदा।
चाह रहित शुचि उदासीन जो,
दक्ष भक्त है वही भला ॥१६॥

जिसको हर्ष नहीं होता है,
द्वेष नहीं जो करता है।
आशाएं जो नहीं बांधता,
और न चिन्ता करता है॥

शुभ का और अशुभ का भी जो,
त्याग सदा करने वाला।
प्रिय है मुझको भक्तिपरायण,
वही सदा रहने वाला ॥१७॥

शत्रु, मित्र, अपमान, मान औ,
शीत, उष्ण, सुख-दुःख सब में।
सम रहता आसक्ति छोड़ कर,
वन्दन में या निन्दा में ॥१८॥

और मौन धारण करता जो,
सदा तुष्ट भी रहता है।
जो अनिकेत भक्त मुनि थिर है,
वही मुझे प्रिय लगता है ॥१९॥

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

यह पवित्र औ सुधा रूप जो,
ज्ञान परायण कर मुझमें।
श्रद्धा से सेवन करते वे,
अतिशय प्रिय हैं भक्त हमें ।।२०।।

श्रीमद्भगवद्गीता के श्री कृष्णार्जुन संवाद में भक्ति योग नामक बारहवां अध्याय समाप्त ।।

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

त्रयोदशोऽध्यायः

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योग

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥१॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत्।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥३॥

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥४॥

तेरहवां अध्याय

क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योग

श्री कृष्ण बोले

हे कुन्ती के लाल, क्षेत्र जो,
यह शरीर कहलाता है।
इसके ज्ञाता ज्ञानी जन में,
क्षेत्री ज्ञाता होता है ॥१॥

सकल क्षेत्र क्षेत्रों के ज्ञाता,
हे भारत समझो मुझको।
क्षेत्री ही का ज्ञान, ज्ञान है,
यह मेरा मत है समझो ॥२॥

यही क्षेत्र है क्या औ कैसा,
यह विकार वाला कैसे।
कौन कहां से क्षेत्री है यह,
शक्ति उसी की सुन मुझसे ॥३॥

विविध छन्द औ भिन्न तरह से,
और युक्तियों के द्वारा।
ब्रह्म मूल में निश्चयपूर्वक,
बहु विधि ऋषियों ने गाया ॥४॥

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ॥५॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥६॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥७॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥८॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥९॥

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥१०॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥

महाभूत औ अहं बुद्धि मन,
दसों इन्द्रियां माया भी।
पांचों विषय द्वेष सुख-दुःख सब,
चेतन और संघात सभी ॥५॥

उक्त विचारों सहित क्षेत्र निज,
सब समास में बता दिया।
मृत्यु आदि हर दुःखों से बचे,
अहं जिन्होंने त्याग दिया ॥६॥

रहे नम्रता, दंभ नहीं हो,
क्षमा अहिंसा गुरु सेवा।
और सरलता, रहे शुद्धता,
अहं रहितता दम थिरता ॥७॥

जन्म-मरण औ जरा व्याधि का,
दुःखों और हर दोषों का।
और बहुत से प्रभु प्रकोप का,
रहे निरन्तर भान सदा ॥८॥

सुत दारा और भवन आदि से,
मोह नहीं होने पाए।
प्रिय अप्रिय में चित्त रहे सम,
क्षोभ नहीं होने पाए ॥९॥

मुझमें ही बस अमिल भक्ति हो,
विजन देश का सेवन हो।
रुचि न रहे कुछ जन समूह में,
आत्म ज्ञान औ दर्शन हो ॥१०॥

उक्त सभी जो कहा आप से,
वही ज्ञान कहलाता है।
ज्ञान नहीं वह कहलाता जो,
इससे उल्टा होता है ॥११॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥१२॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तंसर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥१४॥

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥१५॥

जिसे जानने वाले जग में,
मोक्ष सभी जन पाते हैं।
ज्ञान योग्य हैं क्या वो सब हम,
आज तुम्हें बतलाते हैं।।

वह अनादि औ परम ब्रह्म है,
सत् न कहा जा सकता है।
असत् भी नहीं हो सकता वह,
गुणातीत कहलाता है।।१२।।

जहां देख लो वहीं आंख मुंह,
कर पग श्रुति सिर उसका है।
सभी ओर हो व्याप्त जगत् में,
विद्यमान वह रहता है।।१३।।

सभी इन्द्रियों के हर गुण का,
झलक उसी में मिलता है।
फिर भी इन्द्रिय रहित रूप निर्,
लिप्त सभी से रहता है।।

और वहां अज्ञात जगत् में,
सबको धारण करता है।
वही गुणों से रहित रहे औ,
सभी गुणों का भोक्ता है।।१४।।

वह सब भूतों के अन्दर है,
और चराचर के बाहर।
सूक्ष्म रूप होने से ही वह,
रहे ज्ञान ही से बाहर।।

पर ज्ञानी जन निज ज्ञानों से,
उसे निकट ही पाते हैं।
अज्ञानी अज्ञान में पड़े,
सन्निधि कभी न पाते हैं।।१५।।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१६।।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्।।१७।।

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते।।१८।।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्।।१९।।

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।।२०।।

भिन्न प्राणियों में भी है वह,
औ अभिन्न-सा रहता है।
ज्ञान योग्य वह जगपालक है,
संहारक वह बनता है ॥१६॥

सभी ज्योति का वही ज्योति है,
दूर तिमिर से रहता है।
वही ज्ञान है वही ज्ञेय है,
वही ज्ञान का दाता है॥

प्राप्त ज्ञान से जो होता है,
ब्रह्म वही ज्ञानेश्वर है।
सबके हिय में टिका हुआ है,
वही सभी का ईश्वर है ॥१७॥

बता दिया मैंने समास में,
क्षेत्र ज्ञान क्या होता है।
जिसे जान कर भक्त हमारा,
भाव सभी पा लेता है ॥१८॥

प्रकृति पुरुष दोनों अनादि हैं,
भली भांति यह जानो तुम।
हर विकार औ सभी गुणों को,
इनसे पैदा जानो तुम ॥१९॥

कार्य जिसे काया कहते हैं,
इन्द्रिय के साधन कारण।
इन दोनों के प्रकृति हेतु है,
जिनसे पैदा है कण-कण ॥२०॥

पुरुष प्रकृति में रहने वाला,
ऐसा ही बस करता है।
जो गुण है उत्पन्न प्रकृति से,
भोग उसी का करता है॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।२१।।

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ।।२२।।

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ।।२३।।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।२४।।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।२५।।

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ।।२६।।

और यही सब गुण लगाव से,
भोग भोगना पड़ता है।
भली-बुरी हर योनि जन्म का,
कारण उसका बनता है॥२१॥

इस तन में जो परम पुरुष है,
अनुमन्ता उपद्रष्टा है।
और वही बस महा ईश है,
जग-भर्ता औ भोक्ता है॥२२॥

पुरुष और गुण मयी प्रकृति का,
सदा ज्ञान जो रखता है।
लिप्त हुए हर कर्मों में वह,
जन्म नहीं फिर पाता है॥२३॥

ध्यानयोग के द्वारा कोई,
सांख्य योग से भी कोई।
आत्मा को अपने में देखे,
कर्म योग से ही कोई॥२४॥

और अन्य अज्ञानी जन जो,
ज्ञान नहीं रख पाते हैं।
तो सुन-सुनकर अन्य किसी से,
प्रभु में ध्यान लगाते हैं॥

श्रद्धा से उपदेश ग्रहण कर,
धर्म परायण होते हैं।
मृत्यु रूप इस भव सागर से,
ये सब भी तर जाते हैं॥२५॥

हे कुन्तीसुत, जो कुछ पैदा,
वस्तु चराचर होते हैं।
यही जान लो प्रकृति पुरुष के,
संयोगज सब होते हैं॥२६॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥२७॥

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥२८॥

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥२९॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥३०॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥३१॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥३२॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥३३॥

नाशवान हर प्राणी जन में,
अविनाशी परमेश्वर को।
वर्तमान जाना जिसने है,
उसको तुम ज्ञानी समझो ॥२७॥

सभी जगह जो भी ईश्वर को,
सम ही देखा करता है।
नहीं घात अपना करता वह,
परम धाम भी पाता है ॥२८॥

प्रकृति कर्म करती है सब में,
यही ज्ञान जो रखता है।
वही सही ज्ञानी है जिसने,
स्वयं अकर्ता समझा है ॥२९॥

पृथक् जीव सत्ता हो फिर भी,
टिका एक में जो देखे।
वही ब्रह्म को पाता है जो,
वृद्धि उसी से सब समझे ॥३०॥

अर्जुन निर्गुण यह ईश्वर जो,
है अनादि औ अविनाशी।
बिना कर्म निर्लिप्त भी रहे,
होकर भी वह तनवासी ॥३१॥

यथा सूक्ष्म यह गगन सर्वगत,
फिर भी लिप्त न होता है।
वैसे ही देहों में रह कर,
आत्मा लिप्त न होता है ॥३२॥

सकल जगत् को ज्योतिर्मय यह,
रवि जैसे कर देता है।
वैसे क्षेत्री सभी क्षेत्र को,
ज्योतिर्मय कर देता है ॥३३॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ।।३४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ।।

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञभेद जो,
ज्ञान चक्षु से करता है।
प्रकृति बंध से भूत मुक्ति का,
ज्ञान सदा जो रखता है॥

वही सही ज्ञानी है जग में,
मोक्ष उसे ही मिलता है।
और मोक्ष मिलता है जिसको,
वही ब्रह्म को पाता है॥३४॥

श्रीमद्भगवद्गीता के कृष्णार्जुन संवाद में क्षेत्रक्षेत्रज्ञ विभाग योग नामक तेरहवां अध्याय समाप्त॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

चतुर्दशोऽध्यायः

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गुणत्रय विभाग योग

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।।१।।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।२।।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।।३।।

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ।।४।।

चौदहवां अध्याय

गुणत्रय विभाग योग

श्री भगवान बोले

ज्ञानों में जो ज्ञानोत्तम है,*
उसका अनुभव कर मुनि जन।
काया छोड़ परम गति पाते,
फिर मेरा सुन वही कथन ॥१॥

आश्रय लेकर इसी ज्ञान का,*
पद मेरा जो ग्रहण किया।
उसका फिर से जन्म न होता
व्यथा प्रलय में नहीं मिला ॥२॥

महद् ब्रह्म या प्रकृति हमारी,
पार्थ योनि कहलाती है।
गर्भ उसी में धरता हूं फिर,
उपज भूत की होती है ॥३॥

बस मैं ही हूं हेतु उपज का,
उपज मुझी से है सबका।
बीजारोपण करने वाला,
पुरुष पिता हूं मैं उनका ॥४॥

---

* यहां ज्ञान से तात्पर्य 'अपरा' (लौकिक) ज्ञान नहीं बल्कि 'परा' (ब्रह्म) ज्ञान की ओर संकेत है, इसके लिए कुर्आन मजीद का सूरह रहमान, आयत संख्या १ से १३ तक अवश्य पढ़ें।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥५॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥६॥

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥७॥

महाबाहु, ये सत्त्व रजस् तम,
गुण जो तीनों होते हैं।
इन तीनों गुण की लोकों में,
उपज प्रकृति से होते हैं॥

वे अविनाशी जीव देह को,
हैं जब-जब धारण करते।
निर्विकार इस तन में स्थित,
देही को बांधा करते॥५॥

निर्मल होने के कारण बस,
सर्वोत्तम ही होता है।
इसीलिए वह निरोग कर्ता,
और प्रकाशक होता है॥

पार्थ, तभी तो वह देही को,
ज्ञान ही सदा देता है।
इसी ज्ञान से देही जन को,
सुख का अनुभव होता है॥६॥

हे कुन्ती के लाल, रजो गुण,
राग रूप जो होता है।
चाह और तृष्णा का ही बस,
मूल रूप यह होता है॥

यही देहधारी जीवों को,
रह-रह लोभी करता है।
इसी वजह से कर्म पाश में,
सबको बांधा करता है॥७॥

और तमोगुण ज्ञान हीनता,
का ही जड़ कहलाता है।
हे भारत, वह तनधारी को,
भ्रम में डाला करता है॥

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ।।८।।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।।९।।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।१०।।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञान यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।।११।।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।१२।।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।।१३।।

वही तमोगुण देही जन का,
विवेक ही हर लेता है।
आलस निद्रा, असावधानी,
में ही बांधा करता है ॥८॥

भारत, सत ही सुख देता है,*
रज कर्मों में लाता है।
किन्तु तमोगुण ज्ञान रोक कर,
मन प्रमाद में करता है ॥६॥

भारत, रज, तम, दबा-दबा कर,
प्रकट सत्त्व हो जाता है।
और सत्त्व गुण तमो दबाकर,
रज ऊपर हो आता है ॥

हे अर्जुन, अब आगे सुन लो,
तम भी ऐसा करता है।
सत्त्व रजो को दबा-दबा कर,
स्वयं उदय हो जाता है ॥१०॥

इस काया के हर द्वारों में*
ज्ञान ज्योति जब ज्वलित रहे।
यही जान लो तभी सतोगुण,
मन में हर दम चलित रहे ॥११॥

भरतर्षभ, अर्जुन, सुन जब-जब,
रज की बढ़ती होती है।
तभी लोभमय कर्म चाह से,
शान्ति नहीं मिल पाती है ॥१२॥

हे कुरुनन्दन, और तमोगुण,
की बढ़ती जब होती है।
तब प्रमाद औ ज्ञान हीनता,
मोह मन्दता होती है ॥१३॥

---

* इसकी पुष्टि हेतु कुरान मजीद सूरह २, आयत संख्या ४ से ७ एवं २१ द्रष्टव्य हैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥१६॥

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥१८॥

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥१९॥

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

हुई वृद्धि है सत् की जिसमें,*
वह देही जब मरता है।
उत्तम ज्ञानी जन के निर्मल,
लोक वही फिर पाता है॥१४॥

कर्म संगियों के लोकों में,
रज गुण वाला जाता है।
और तमोगुण वाला मर कर,
मूढ़ योनि ही पाता है॥१५॥

सत्कर्मों का फल इस जग में।
सात्त्विक निर्मल होता है।
और तामसी ज्ञानहीनता,
राजस फल दुःख देता है॥१६॥

ज्ञान सत्त्व से पैदा होता,
रजस् लोभ उपजाता है।
मोह अज्ञान औ प्रमाद यह,
तीनों तम से होता है॥१७॥

सात्त्विक दिन-दिन ऊपर चढ़ता,
मध्य राजसी रहता है।
और तामसी गुण वाले का,
अधः पतन ही होता है॥१८॥

ज्ञानी ने जब ऐसा देखा,
गुण ही सब का कर्ता है।
परे गुणों से निर्गुण ज्ञाता,
वह पद मेरा पाता है॥१९॥

तन से जब उत्पन्न गुणों पर,
विजयी देही होता है।
जन्म-मरण औ सुख-दुख से तब,
उसे मोक्ष मिल जाता है॥२०॥

---

*इसकी पुष्टि हेतु कु० म० सू० २, आयत सं० ४ से ७ एवं २१ द्रष्टव्य हैं।

अर्जुन उवाच

कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ।।२१।।

श्री भगवानुवाच

प्रकाशं च पवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ।।२२।।

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ।।२३।।

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।।२४।।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ।।२५।।

अर्जुन बोला

प्रभु, किन संकेतों से देही,
गुणातीत हो जाता है।
क्या चरित्र है उसका, कैसे,
पार गुणों को करता है ॥२१॥

श्री भगवान बोले

सतगुण की परिणति प्रकाश है,
पाण्डव माया रज गुण का।
मोह तमो गुण से होता है,
यही नतीजा है सबका ॥

यदि प्रवृत्ति में होते हैं तो,
जो करता है आह नहीं।
पर निवृत्ति में होने पर तो,
वह करता है चाह नहीं ॥२२॥

उदासीन जो थिर रहते हैं,
जिसे न विचलित गुण करते।
गुण ही अपना काम कर रहे,
इसे मान जो थिर रहते ॥२३॥

सुख-दुख में मन सम रखता जो,
मिट्टी सोना सम समझा।
अप्रिय-प्रिय निन्दा वन्दन को,
जो समान हर दम समझा ॥

स्तुति निन्दा औ मित्र शत्रु सब,
एक तरह जो समझा है।
अपनी हर अपमान मान जो,
सब समान ही समझा है ॥२४॥

कर्मफलों की छोड़ वासना,
निस्पृह जो हो जाता है।
वही पुरुष बस इस धरती पर,
गुणातीत कहलाता है ॥२५॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥२६॥

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥

एक निष्ठ जो भक्ति योग से,
मुझे हमेशा सेता है।
पार इन गुणों को करके वह
ब्रह्म रूप हो जाता है॥२६॥

नित्य मोक्ष औ ब्रह्म प्रतिष्ठा,
की स्थिति बस मैं ही हूं।
धर्म सनातन औ उत्तम सुख,
की भी स्थिति मैं ही हूं॥२७॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में गुणत्रय विभाग योग नामक चौदहवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद् गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

पञ्चदशोऽध्यायः

अथ पञ्चदशोऽध्याय:

पुरुषोत्तम योग

श्री भगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥१॥

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा
गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला:।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि
कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥२॥

पन्द्रहवां अध्याय

पुरुषोत्तम योग

[इस अध्याय में भगवान ने क्षर और अक्षर से परे अपना उत्तम स्वरूप समझाया है।]

श्री भगवान बोले

पीपल तरु है जगत मूलवत्,
पुरुष पुरातन ऊपर है।
अधः चराचर शाखावत् है,
वेद पत्र-सा उस पर है॥

ऐसे अविनाशी पीपल का,
ज्ञानी जन वर्णन करते।
इसे जानने वाले जो हैं,
वेद ज्ञान वो हैं रखते॥१॥

अधः शाख पशु आदि योनि है,
ऊपर उत्तम शाख पले।
सत रज तम जल से सिंचित हो
फैले हैं सब साथ मिले॥

विषय रूप पल्लव हैं फैले,
जग पीपल की डाली हैं।
मनुज लोक में जड़ें कर्म की,
बन्धन करने वाली हैं॥२॥

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ।।३।।

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।।४।।

निर्मानमोहा जितसंगदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ।।५।।

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।६।।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।७।।

नजर नहीं आता है उसका,
सही रूप इस दुनिया में।
आदि अन्त या नींव नहीं है,
उस पीपल की दुनिया में॥

वद्ध मूल फिर उस तरुवर को,
वैरागी वन काट करे।
और मनुज यह करें वन्दना,
जन्म मरण मत बाट फिरें॥३॥

और कहे जिसने पुराण इस,
माया को फैलाया है।
चरणों में उस आदि पुरुष के,
अब निज मन फिर आया है॥४॥

जिसने जीता संग दोष को,
मान मोह का त्याग किया।
खुद में खुद जो लीन हो गया,
इच्छाओं का त्याग किया॥

मुक्त हुआ है सुख दुःख से जो,
वही मुक्त हो जाता है।
ज्ञानी है वह धरती पर फिर,
अविनाशी पद पाता है॥५॥

वहां सूर्य औ चन्द्र अग्नि को,
ज्योति नहीं देना पड़ता।
परम धाम है वह मेरा फिर,
जन्म नहीं लेना पड़ता॥६॥

मेरा ही तो अंश सनातन,
जीव लोक में रहता है।
जीव प्रकृति के इन्द्रिय मन को,
कर्षित करता रहता है॥७॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।८।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।९।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।१०।।

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।।११।।

यथा पवन ले गन्ध सुमन से,
अन्य जगह पर जाता है।
अन्य जगह पर जाकर फिर से,
वही गन्ध बिखराता है॥

इसी तरह से यह जीवन जब-
जब शरीर में जाता है।
पहले तन का फल इन्द्रिय के,
साथ वहीं ले जाता है॥८॥

आंख कान तक जीभ नाक औ,
आश्रय लेकर निज मन का।
आश्रय इन्द्रिय मन का लेकर,
सेवन करता विषयों का॥९॥

तन को हैं जो तजने वाले,
या उसमें रहने वाले।
या गुण का आश्रय लेकर हैं,
भोग उसे करने वाले॥

ऐसे ईश्वर अंश जीव का,
मूढ़ नहीं दर्शन पाते।
ज्ञान चक्षु है जिनकी भी बस,
वे ही हैं दर्शन पाते॥१०॥

अपने में जो है ईश्वर बस,
उसे यत्न से योगी जन।
ध्यान आदि और निर्मल मन से,
करते रहते हैं दर्शन॥

अकृत है मन जिनका भी औ,
आत्म-शुद्धि की कभी नहीं।
करते हैं हर यत्न आदि पर,
दर्शन पाते कभी नहीं॥११॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२।।

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३।।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।।१४।।

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।।१५।।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।१६।।

सूर्य चन्द्र औ तेज अग्नि का,
जो भी भासित होता है।
यह समझो बस अखिल जगत् में,
वह मेरा ही होता है।।१२।।

शक्ति भूमि पर प्रवेश कर मैं,
करता भूतों को धारण।
औषधि बनकर सोम रसों में,
मैं ही करता जग पोषण।।१३।।

जठर अग्नि बनकर भूतों के,
तन में मैं घुस जाता हूं।
प्राण वायु औ अपान बनकर,
चारों अन्न पचाता हूं।।

आयें हम सब मिलकर समझें,
चार अन्न क्या होते हैं।
भोज्य भक्ष्य औ चोष्य लेह्य सब,
चार अन्न ये होते हैं।।१४।।

सब के हिय में बसा हुआ ये,
मेरे द्वारा होता है।
स्मृति ज्ञान औ अभाव उनका,
मेरे द्वारा होता है।।

वेदों द्वारा ज्ञान योग्य हूं,
ज्ञाता वेदों का मैं हूं।
और प्रकट करता भी समझो,
वेदान्तों का मैं ही हूं।।१५।।

क्षर-अक्षर दो पुरुष जगत् में,
नाशवान अविनाशी हैं।
सकल चराचर क्षर औ उसमें,
थिर चेतन अविनाशी हैं।।१६।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥१८॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥१९॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।
एतद्बुध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥

श्रेष्ठ पुरुष है इससे ऊपर,
जो ईश्वर कहलाता है।
यह ईश्वर हो व्याप्त लोक में,
जग का पोषण करता है ॥१७॥

क्योंकि परे हूं इस क्षर से मैं,
अक्षर से भी उत्तम हूं।
इसीलिए मैं वेदों में औ,
लोकों में पुरुषोत्तम हूं ॥१८॥

अर्जुन, जिसने मोह रहित हो,
पुरुषोत्तम मुझको जाना।
पूर्ण भाव से भजता मुझको,
सभी सही जिसने जाना ॥१९॥

हे भारत, अति गुप्त शास्त्र वह,
मैंने तुमसे कहा अभी।
इसे जानकर मानव ज्ञानी,
बन, जीवन को करें सही ॥२०॥

श्रीमद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में पुरुषोत्तम योग नामक
पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

षोडशोऽध्यायः

अथ षोडशोऽध्यायः

देवासुर सम्पद् विभाग योग

श्री भगवानुवाच

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।।१।।

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।।२।।

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ।।४।।

सोलहवां अध्याय

देवासुर सम्पद् विभाग योग

श्री भगवान बोले

दया, दान, दम, शुद्धि चित्त की,
अभय त्याग तप तेज क्षमा।
शान्ति शौच धृति सत्य सरलता,
यज्ञ अहिंसा सभी जहां ॥१॥

क्रोध द्रोह है नहीं कहीं भी,
पैशुन और न लोलुपता।
कभी नहीं मृदु मर्यादा की,
कहीं नहीं है चंचलता ॥२॥

ज्ञान योग में निष्ठा जिनकी,
वेदपाठ जो करते हैं।
दैवी संपत् ले जन्मे जो,
ये गुण जिनमें होते हैं ॥३॥

दंभ दर्व अभिमान क्रोध औ,
परुष वचन करने वाले।
यही सभी अज्ञान आसुरी,
लिए जन्म लेने वाले ॥४॥

दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।।५।।

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।७।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ।।८।।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ।।९।।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः ।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ।।१०।।

मोक्षदातृ दैवी संपत् है,
बन्ध आसुरी का करना।
दैवी संपत् ले जन्मा तू,
मत विषाद अर्जुन करना ॥५॥

दैवी है और सृष्टि आसुरी,
दो ही है अर्जुन जग में।
दैवी का तो कथन कर दिया,
करता अन्य कथन अब मैं ॥६॥

उद्भव और समापन का कुछ,
आसुर जन को ज्ञान नहीं।
शौच और आचार सत्य का,
कुछ भी उनको भान नहीं ॥७॥

वे कहते हैं जगत् अनीश्वर,
निराधार है सत्य नहीं।
विषय भोग है नर मादा का,
है फल उनकी सृष्टि सभी ॥८॥

क्रूर कर्म करने वाले हैं,
मलिन चित्त मति मंद सभी।
यथा शत्रु जग नाश हेतु ही,
लेते हैं ये जन्म सभी ॥९॥

तृप्त न होने वाली इच्छा,
वाले से सब दंभी जन।
मानी औ मद अंध हुए हैं,
मिल-जुलकर ये पापी जन॥

और अशुभ निश्चय वाले हैं,
दुष्ट कामना रखते हैं।
और मोह में पड़-पड़ कर ही,
प्रवृत्त सब में होते हैं ॥१०॥

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ।।११।।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ।।१२।।

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।।१३।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ।।१४।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ।।१५।।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ।।१६।।

अंतकाल तक अंत न होने,
वाली ऐसी चिन्ता की।
आश्रय लेकर कामी भोगी,
भोग सभी कुछ है ऐसी॥११॥

शत-शत आशाओं में निश्चय,
करके हैं सब फंसे हुए।
भोग हेतु अन्याय क्रोध से,
करते हैं सब धन संचय॥१२॥

आज यही पाया मैंने कल,
और मनोरथ पाऊंगा।
वह धन इतना है मेरा कल,
इससे ज्यादा लाऊंगा॥१३॥

आज एक दुश्मन को मारा,
कल दूजे को मारूंगा।
मैं ईश्वर हूं इस धरती पर,
जो चाहूं सो कर लूंगा॥१४॥

मैं भोगी बलवान सिद्ध हूं,
सुखी और श्रीमान भला।
मेरे सम है कौन दूसरा,
मैं कुलीन धनवान भला॥

यज्ञ करूंगा दान करूंगा,
मौज करूंगा इस जग में।
मूढ़ हुए अज्ञानी जन जो,
सब ऐसे ही कहते हैं॥१५॥

इसी भरम में पड़े-पड़े सब,
मोह जाल में फंसते हैं।
विषय भोग में मस्त हुए फिर,
अशुभ नरक में गिरते हैं॥१६॥

आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥१७॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥१८॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥१९॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥२०॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥२१॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥२२॥

अपने को ही बड़ा मानकर,
निज बन्धन करने वाले।
अकड़बाज धन, मान, मदों में,
मस्त सदा रहने वाले॥

ये दंभी जन इस जग में सब,
मिथ्यावादी होते हैं।
दंभ कपट औ छल-बल से विधि-
रहित यज्ञ सब करते हैं॥१७॥

अहं दर्प बल काम क्रोध का,
आश्रय ले लेने वाले।
निन्दक हैं अन्तर्यामी का,
द्वेष सदा करने वाले॥१८॥

द्वेषी क्रोधी अशुभ अधम को,
दंड जगत् में देता हूं।
मैं उनको दानवी योनि में,
बार-बार कर देता हूं॥१९॥

जन्म-जन्म आसुरी योनि पा,
मुझे नहीं पा पाते हैं।
हे कुन्ती के लाल, मूढ़ जन,
अधिक अधम गति पाते हैं॥२०॥

कष्ट स्वयं को देने वाले,
ये सब द्वार नरक के हैं।
काम क्रोध औ लोभ से बचे,
ये नाशक सब जग के हैं॥२१॥

कुन्ती सुत, इन विविध नरक के,
दूर द्वार से रहता जो।
उत्तम ही वह गति पाता है,
भला आप जो करता हो॥२२॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।२३।।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।२४।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे देवासुरसंपद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ।।

मन मानी विधि शास्त्र छोड़कर,
विषय भोग जो करता है।
सिद्धि परम गति उत्तम सुख में,
उसे नहीं कुछ मिलता है॥२३॥

अतः करो क्या, नहीं करो क्या,
यह सब शास्त्रों से समझो।
शास्त्र कहे जो वही उचित है,
यही जानकर कर्म करो॥२४॥

श्रीभद्भगवद्गीता के श्रीकृष्णार्जुन सवाद में देवासुर सम्पद् विभाग योग नामक सोलहवां अध्याय समाप्त ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

सप्तदशोऽध्यायः
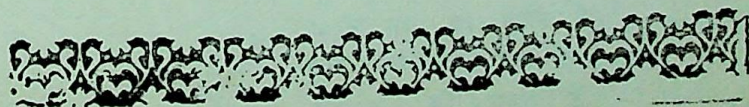
अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन उवाच

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥२॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥३॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥४॥

सत्रहवां अध्याय

श्रद्धात्रय विभाग योग

[शास्त्र को प्रमाण मानना चाहिए, यह सुनकर अर्जुन को शंका हुई कि शिष्टाचार को न मान सके पर श्रद्धापूर्वक आचरण करे, उसकी कैसी गति होती है। इस अध्याय में इसका उत्तर देने का प्रयत्न है।]

अर्जुन बोला

शास्त्र विधि उत्सृज्य हे मोहन,
श्रद्धा जिनसें होती है।
सात्त्विक राजस् तमस् गुणों में,
उनकी क्या गति होती है ॥१॥

श्री भगवान बोले

सुनो, देहियों में स्वभाव से,
श्रद्धा तीनों होती है।
सत, रज, तम, गुण हर प्राणी के,
श्रद्धाओं में होती है ॥२॥

हे भारत, सबकी श्रद्धा जो,
निज समान ही होती है।
वैसा ही नर होता जिसकी,
श्रद्धा जैसी होती है ॥३॥

सात्त्विक जन देवों को राजस,
असुर यक्ष को भजते हैं।
और अन्य तामस जन जो हैं,
भूत-प्रेत को भजते हैं ॥४॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥५॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥७॥

आयुःसत्त्वबलारोग्य-
सुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या
आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥८॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥९॥

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥१०॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥११॥

अहं दंभ औ काम राग के,
जो जन बल से प्रेरित हैं।
शास्त्र रहित तप घोर करे सब,
मूढ़ वृत्ति से सेवित हैं ॥५॥

तन में है जो पंचभूत औ,
मुझ-सा अन्तर्यामी को।
उसी मूढ़ आसुरी कर्म से,
सदा कष्ट देते सबको ॥६॥

तीन तरह के खान-पान भी,
प्रिय सबको ही लगते हैं।
भेद सुनो अब उसी तरह से,
यज्ञ तीन भी होते हैं ॥७॥

आयु सत्त्व बल प्रीति पराक्रम,
सुख रुचि जिनसे बढ़ते हैं।
रसमय चिकने बल वर्धक प्रिय,
सात्त्विक भोजन होते हैं ॥८॥

खट्टे खारे तीखे रूखे,
गरम दाह करने वाले।
ये राजस के प्रिय भोजन दुःख,
रोग शोक देने वाले ॥९॥

जूठन बासी बास भरी औ,
भक्ष्य नहीं जो होते हैं।
ये सब नीरस भोजन तामस,
जन दो ही प्रिय होते हैं ॥१०॥

फल की चाह नहीं जिसमें मन,
लगा यज्ञ जो करता है।
विधिपूर्वक जो होता है वह,
सत्त्व यज्ञ सब होता है ॥११॥

अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥१२॥

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥१३॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥१४॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥१५॥

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥१६॥

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥१७॥

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥१८॥

भरत श्रेष्ठ, जो फल की इच्छा,
और दंभ से होता है।
उसे राजसी यज्ञ जान लो,
वह राजस से होता है।।१२।।

नहीं अन्न हो पैदा जिनमें,
मंत्र नहीं विधि त्याग नहीं।
वह तामस है यज्ञ जगत् में,
जिनमें है विश्वास नहीं।।१३।।

गुरु ज्ञानी द्विज देव वन्दना,
शुचि सीधा जो होता है।
ब्रह्मचर्य व्रत और अहिंसा,
कायिक तप कहलाता है।।१४।।

सत्य वचन जो होता है वह,
वाचिक तप कहलाता है,
धर्म ग्रन्थ अभ्यास कराता,
हितकर प्रिय सुख देता है।।१५।।

मन प्रसाद औ मौन सौम्यता,
मन संयम जो रखता है।
शुद्ध भावना करता है जो,
मानस तप कहलाता है।।१६।।

फल-इच्छा का त्याग करे जो,
मानव मन थिर रखते हैं।
कायिक वाचिक मनसा तप को,
सात्त्विक तप सब कहते हैं।।१७।।

प्रजाहित सत्कार मान औ,
दंभयुक्त जो होता है।
और नहीं जो ध्रुव थिर होता,
राजस तप कहलाता है।।१८।।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१९।।

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।२०।।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।२१।।

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ।।२२।।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ।।२३।।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ।।२४।।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपः क्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ।।२५।।

कष्ट उर ठाक नाश दूसरे,
के खातिर जो होता है।
हे अर्जुन, वह तप धरती पर,
तामस तप कहलाता है॥१६॥

देना है यह उचित जानकर,
बिन बदले जो होता है।
देशकाल औ पात्र देख कर,
दिया दान सत् होता है॥२०॥

बदले की लालच करके दुख,
सहित दिया जो जाता है।
फल की चाह जुटा जिनमें वह,
दान राजसी होता है॥२१॥

देश काल औ पात्र जनों का,
कुछ भी किये विचार बिना।
दान तामसी कहा गया वह,
दिया गया जो मान विना॥२२॥

ब्रह्म ओम् औ तत्सत् जैसे,
तीन तरह के कहे गये।
निर्मित इनसे पूर्व काल में,
वेद यज्ञ द्विज किये गये॥२३॥

तब हर कर्म ब्रह्म वादी के,
सदा ओम् से होते हैं।
और यज्ञ तप दान आदि वे,
सभी ओम् से करते हैं॥२४॥

मोक्ष चाहने वाले तत् का,
ही उच्चारण करते हैं।
फल की आशा किये बिना तप,
ज्ञान-दानरत रहते हैं॥२५॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ।।२६।।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।।२७।।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।२८।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।

साधु भाव सद्भाव के लिए,
सत् प्रयोग में आता है।
और पार्थ, मंगल कर्मों में,
तत् प्रयोग में आता है॥२६॥

है सत् की संज्ञा दी जाती,
तप ज्ञान दान स्थिति को भी।
ऐसा निश्चय भी सत् है जो,
तत् निमित्त हैं कर्म सभी॥२७॥

ऊपर के तीनों पद्यों का,
भाव अर्थ बस यही हुआ।
उत्तम होगा प्रभु अर्पण सब,
कर्म जगत् में किया हुआ॥

यज्ञ दान तप कर्म अन्य भी,
बिन श्रद्धा जो होता है।
वही असत् कहलाता है वह,
दोनों लोक डुबोता है॥२८॥

इस अध्याय की पुष्टि हेतु कु० म० सूरह २, आयत संख्या २६१ से २६६ तक पूरा देखा जाए।

अथ श्रीमद्भगवद्गीता
हिन्दी पद्यानुवाद

अष्टादशोऽध्यायः
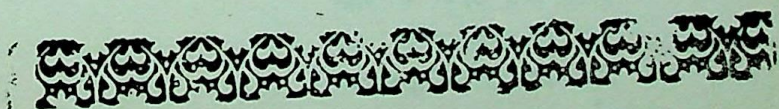
अथाष्टादशोऽध्यायः

मोक्ष संन्यास योग

अर्जुन उवाच

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।।२।।

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ।।३।।

निश्चयं श्रृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।।४।।

अठारहवां अध्याय

मोक्ष संन्यास योग

[इस अध्याय को उपसंहार रूप मानने की बात है। इस अध्याय में कहा गया है कि सब धर्मों को तजकर मेरी शरण लें अर्थात् ब्रह्म की शरण लें।]

अर्जुन बोला

हृषीकेश केशव केशी है,
महा भुजा वाले भगवन्।
पृथक्-पृथक् संन्यास त्याग का,
भेद जान लूं है ये मन॥१॥

श्री भगवान बोले

कामजनित हर कर्म त्याग को,
ज्ञानी जन संन्यास कहें।
कर्मों का फल-त्याग, त्याग है,
बुद्धिमान यह बात कहें॥२॥

पंडित जन का कथन यही बस,
दोषी कर्मों को त्यागें।
कुछ लोगों का कहना है मत,
ज्ञान दान तप को त्यागें॥३॥

त्याग के विषय में भरतोत्तम,
यह निर्णय मेरा तू सुन।
तीन तरह के त्याग का कथन,
किया गया है हे अर्जुन॥४॥

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥५॥

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥६॥

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः॥७॥

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्॥८॥

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः॥९॥

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः॥१०॥

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते॥११॥

यज्ञ दान तप कर्म नहीं हैं,
इस जग में तजने वाले।
यज्ञ दान तप कर्म विवेकी,
को पावन करने वाले ॥५॥

मोह और फल-इच्छा तज कर,
पार्थ कर्म जो करते हैं।
ऐसा मेरा निश्चित मत है,
उत्तम इसको कहते हैं ॥६॥

उचित नहीं है नियम कर्म का,
त्याग मोह के वश होकर।
किया किसी ने त्याग कर्म को,
तो समझो तामस होकर ॥७॥

कष्ट समझ दुःख के भय से जो,
त्याग कर्म को करता है।
वह राजस है त्याग-त्याग का,
उसे नहीं फल मिलता है ॥८॥

नियत कर्म कर हे अर्जुन तुम,
फल की इच्छा किए बिना।
वही त्याग सात्त्विक कहलाता,
त्याग हुआ जो मोह बिना ॥९॥

सत्त्व निष्ठ जो पुरुष विवेकी,
दुखप्रद कर्म नहीं तजता।
संशयरहित वही त्यागी है,
जो सुख-मोह नहीं करता ॥१०॥

नहीं त्याग सर्वथा कर्म का,
तनधारी कर पाता है।
किन्तु कर्म का फल जो तजता,
वह त्यागी कहलाता है ॥११॥

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥१२॥

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥१३॥

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥१४॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥१५॥

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥१६॥

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥१७॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥१८॥

इष्ट अनिष्ट औ मिश्रित तीनों,
फल कर्मों के होते हैं।
कामी नर के मर कर होते,
त्यागी इनसे बचते हैं॥१२॥

सांख्य शास्त्र में हेतु पांच हैं,
कर्मसिद्धि के बारे में।
महा भुजा वाले अर्जुन सुन,
मुझसे उसके बारे में॥१३॥

यही पांच वे सभी जान लो,
अधिष्ठान कर्ता करणम्।
भिन्न-भिन्न हैं सभी क्रियाएं,
और दैव जानो पंचम्॥१४॥

तन-मन और वचन से कोई,
कर्म पुरुष जो करते हैं।
न्यायी या विपरीत कर्म हो,
पांच हेतु ये होते हैं॥१५॥

अकृत बुद्धि से इस पर भी जो,
खुद को कर्ता कहता है।
दुर्मति है वह इस धरती पर,
कुछ भी नहीं समझता है॥१६॥

जिसकी प्रज्ञा मलिन नहीं है,
वह आबद्ध नहीं होता।
हत कर भी वह इस दुनिया को,
नहीं जगत में ही मरता॥१७॥

तीन तत्त्व कर्मों के प्रेरक,
ज्ञान ज्ञेय औ परिज्ञाता।
करण कर्म औ कर्ता है यह,
कर्म संग त्रय कहलाता॥१८॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥१९॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥२०॥

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥२१॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥२२॥

नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥२३॥

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥२४॥

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥२५॥

गुण भेदों से ज्ञान कर्म औ,
कर्ता त्रय ही होते हैं।
सुन मुझसे जो गुण गणना में,
उनके वर्णन होते हैं ॥१९॥

जिससे मानव हर प्राणी में,
उसी एक प्रभु को देखे।
उसको सात्त्विक ज्ञान जान जो,
मेल भिन्नता में देखे ॥२०॥

भिन्न-भिन्न सारे भूतों में,
भिन्न भाव का अवलोकन।
होता है जिस ज्ञान से वही,
राजस है कुन्ती नन्दन ॥२१॥

जिसके द्वारा एक कार्य में,
सब होने की लालच है।
गुप्त भेद से रहित ज्ञान जो,
तुच्छ है वही तामस है ॥२२॥

राग, द्वेष, आसक्ति छोड़ जो,
नित्य नियम से होता है।
फल की चाह नहीं जिसमें सत,
कर्म वही कहलाता है ॥२३॥

किसी कामना अहंकार या,
क्लेश युक्त जो होता, है।
मध्यम है वह कर्म जहां में,
राजस वह कहलाता है ।२४॥

पर पीड़ा धन नाश शुभाशुभ,
ज्ञान रहित जो होता है।
निज पौरुष बिन जाने होता,
वह तामस कहलाता है ॥२५॥

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥२६॥

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥२७॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥२८॥

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ॥२९॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३०॥

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥३१॥

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥३२॥

मुक्त संग औ अहं रहित जो,
धृति उत्साह समन्वित है।
हानि-लाभ में निर्विकार वह,
सत्कर्ता सम्मानित है ॥२६॥

कर्म फलों का अभिलाषी जो,
रागी लोभी होता है।
हर्ष शोक वाला कर्ता, जो
है वह राजस होता है ॥२७॥

झूठा झक्की नीच आलसी,
जो अयुक्त पामर होता।
शठी विवादी बहुसूत्री वह,
होता है तामस कर्ता ॥२८॥

सुनो धनंजय, तीन तरह के,
धैर्य बुद्धि गुण कहता हूं।
पूरे गुण या भिन्न-भिन्न हों,
सब मैं तुझसे कहता हूं ॥२९॥

लगन विरक्ति भयाभय बन्धन,
मोक्ष भेद जो जान सके।
बुद्धि वही सात्त्विक कहलाती,
सही गलत जो भान सके ॥३०॥

जिस बुद्धि में धर्म अधर्म औ,
कर्त्तव्यों का भान नहीं।
इस पर भी जो गर्व युक्त हो,
बुद्धि राजसी पार्थ वही ॥३१॥

बुरे कर्म को धर्म मानती,
तम से है जो घिरी हुई।
हर बातें जो उलटी समझे,
पार्थ तामसी बुद्धि वही ॥३२॥

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥३३॥

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥३४॥

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥३५॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥३६॥

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥३७॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥३८॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥३९॥

क्रिया इन्द्रियों मन प्राणों की,
जिस धृति से नर करता है।
वह धृति सात्त्विक है जिससे नर,
साम्य बुद्धि ही रखता है ॥३३॥

जिस धृति से नर धर्माधर्म औ,
काम आदि जो करता है।
जिसका फल तत्काल चाहता,
रजधृति ही वह होता है ॥३४॥

स्वप्न शोक भय विषाद जिनसे,
मद दुर्बुद्धि पुरुष करता।
जिस धृति से तज सके नहीं सब
उसको तामस जग कहता ॥३५॥

भरतर्षभ, अब तीन तरह के,
सुख का वर्णन सुन मुझसे।
नर खुश रह सकता है जिसके,
सतत यत्न ही करने से ॥३६॥

अन्त दुःखों का जिनसे होता,
पहले विष-सा लगता है।
जिसका फल है सुधा सरीखा,
वह सात्त्विक सुख होता है ॥३७॥

विषय और इन्द्रियों योग से,
मधु-सा पहले लगता है।
पर फल विष के जैसा होता,
वह राजस सुख होता है ॥३८॥

पहले ही जो फल में मन को,
मोह-ग्रस्त कर लेता है।
निद्रा अलस नशा से मिलता,
सुख तामस वह होता है ॥३९॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥४०॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥४२॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम् ॥४३॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥४४॥

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥४५॥

धरती में या देव मध्य कुछ,
स्वर्ग आदि में कहीं नहीं।
प्रकृति मध्य पैदा हो जाए,
तीन गुणों से मुक्त नहीं ॥४०॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के,
कर्मों के जो भाग हुए।
हे अर्जुन, उनके स्वभाव से,
गुण कर्मों के भाग हुए ॥४१॥

शम दम तप शुचि क्षमा सरलता,
सिद्धि ज्ञान औ आस्तिकता।
ये स्वभाव हैं कर्म विप्र के,
करें कर्म निज विप्र सदा ॥४२॥

शौर्य तेज धृति और दक्षता,
युद्ध अडिगपन दान सदा।
यही कर्म क्षत्रिय स्वभाव के,
उत्तम शासन करने का ॥४३॥

कृषि गो रक्षा बनिज विशा के,
कर्म शूद्र के हैं सेवा।
पार्थ, कर्म ये हैं स्वभाव से,
अतः करें वे कर्म सदा ॥४४॥

निज कर्मों में रत रहता जो,
मोक्ष वही नर पाता है।
अब सुन कैसे रत रह कर नर,
मोक्ष सही पा पाता है ॥४५॥

भूतों की गति होती जिनसे,
जिनमें जग परिपूरित है।
वही ब्रह्म है कण-कण में औ,
जो करता सबका हित है॥

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥४६॥

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ॥४८॥

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥५०॥

निज कर्मों में लगा हुआ नर,
उसको ही जो भजता है।
सच कहता हूं हे अर्जुन बस,
वही मोक्ष पा पाता है ॥४६॥

अन्य धर्म हो सुलभ मगर निज,
विगुण धर्म ही अच्छा है।
प्रकृति नियत नर कर्म करे जो,
पाप उसे नहीं लगता है ॥४७॥

कुन्ती-सुत, ये सहज कर्म निज,
दोष सहित होने पर भी।
उसे न छोड़ो अग्नि धूमवत्,
दोष युक्त हैं कर्म सभी ॥४८॥

जिसने खींचा सभी ओर के,
मोह जाल से मन अपना।
त्याग दिया जो सभी चाह निज,
जिसने जीता मन अपना ॥

वही पुरुष संन्यासी हो,
निष्कर्म भाव को पाता है।
परम सिद्धि पाने वाला ही,
सही मोक्ष पा पाता है ॥४९॥

हे कुन्ती-सुत, प्राप्त सिद्धि से,
ब्रह्म, पुरुष पाता कैसे।
वही ज्ञान बस परा ज्ञान है,
सो समास में सुन मुझसे ॥५०॥

बुद्धि हो गयी विशुद्ध जिनकी,
ऐसा योगी दृढ़ जो हो।
निज वश में जो बांध लिया हो,
शब्द आदि तज विषयों को ॥

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥५५॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धि योगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥५७॥

राग द्वेष को जीत लिया हो,
एकाकी सेवन करके।
वाक्काय मन अंकुश में कर,
अल्प-अल्प भोजन करके ॥५१॥

ध्यान योग में नित्य परायण,
रहकर होकर वैरागी।
अहं दर्प बल काम क्रोध औ,
तजे परिग्रह बड़भागी ॥५२॥

औ जो ममता त्याग दिया हो,
शांत भाव जो रहता है।
वही जहां में ब्रह्म भाव को,
पाने लायक बनता है ॥५३॥

ब्रह्म भाव जो प्राप्त किया नर,
खुश हो, शोक नहीं करता।
भूतों में सम मुझको पा कर,
कुछ की चाह नहीं करता ॥५४॥

कौन और कैसा हूं मेरा,
ज्ञान भक्ति से जो करता।
जानबूझ कर यथार्थ मुझको,
लीन मुझी में है रहता ॥५५॥

मेरा आश्रय पाने वाला,
कर्म सदा सब करता है।
फिर भी वह मेरे प्रताप से,
आश्रय पद को पाता है ॥५६॥

अर्पण मन से हर कर्मों को,
मुझमें तन्मय खुद होकर।
लगा मुझी में चित्त निरन्तर,
प्रज्ञा का आश्रय लेकर ॥५७॥

मच्चितः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ।।५८।।

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।५९।।

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तु नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।६०।।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।६१।।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।६३।।

हर संकट मेरे प्रताप से,
पार सदा कर जायेगा।
यह सब तब होगा जब तू बस,
मुझमें चित्त लगायेगा॥

किन्तु अगर तू अहंकार में,
नहीं सुनेगा जब मेरी।
तभी नाश हो जायेगा तू,
अतः वचन सब सुन मेरी॥५८॥

अहंकार में यदि माने तू,
नहीं करूंगा युद्ध अभी।
तो तेरा निश्चय, मिथ्या है,
तुझे प्रकृति ही खींचेगी॥५९॥

प्रकृतिजन्य हर कर्म से बंधे,
होने के कारण अर्जुन।
नहीं चाहते हो जो करना,
वही करोगे बरबस तुम॥६०॥

अर्जुन, ईश्वर सभी प्राणियों,
के हिय में ही रहता है।
माया-बल से घड़ा चाकवत्,
वही घुमाता रहता है॥६१॥

हे भारत, तुम सर्वभाव से,
उसी शरण में ही जाओ।
ईश कृपा से परम शान्तिमय,
अमर पदों को ही पाओ॥६२॥

इस प्रकार अति गुह्य ज्ञान जो,
तुझसे मैंने अभी कहा।
भली-भांति से विचार करके,
वही करो जो लगे भला॥६३॥

सर्वगुह्यतमं भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥६४॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥६५॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥६६॥

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥६७॥

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥६८॥

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥६९॥

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥७०॥

सबसे गुह्य वचन जो मेरा,
अब उसको भी सुन अर्जुन।
तेरा हित ही तुझे कहूंगा,
क्योंकि मुझे अति प्रिय हो तुम ॥६४॥

लगन लगा कर भक्त बनो औ,
मेरे खातिर यज्ञ करो।
नमस्कार कर मुझे प्राप्त कर,
सत्य वचन है प्रिय तुम हो ॥६५॥

तज कर अब तुम हर धर्मों को,
मेरा ही आश्रय ले लो।
मुक्त करूंगा हर पापों से,
हे अर्जुन, मत शोक करो ॥६६॥

जो कि तपस्वी भक्त नहीं है,
नहीं चाहता जो सुनना।
औ जो मेरा द्वेषी है बस,
उसे ज्ञान यह मत कहना ॥६७॥

किन्तु हमारा गुह्य ज्ञान जो,
मेरे भक्तों को देगा।
वही हमारी परम भक्ति से,
बस मुझको ही पायेगा ॥६८॥

उससे बढ़ कर पुरुष जनों में,
कोई मेरा भक्त नहीं।
उससे बढ़कर इस धरती पर,
प्रिय मेरा है कहीं नहीं ॥६९॥

धर्म युक्त संवाद हमारा,
जो अभ्यास करेगा नित।
वही यज्ञ से मुझे भजेगा,
यह निश्चित है मेरा मत ॥७०॥

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥७२॥

अर्जुन उवाच

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥७३॥

संजय उवाच

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥७४॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥७५॥

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥७६॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥७७॥

और पुरुष जो द्वेष रहित हो,
श्रद्धा से बस सुन लेगा।
वही मुक्त हो पुण्यवान-सा,
उत्तम पद को चुन लेगा ॥७१॥

पार्थ, सुना ये चित्त लगा तो,
मोह नष्ट क्या हो पाया?
वही मोह जो ज्ञान हीनता,
के कारण ही था आया? ॥७२॥

अर्जुन बोले

हे अच्युत, तेरे प्रताप से,
तिमिर मोह सब नष्ट हुआ।
समझ गया सन्देह मिट गया,
माना तेरा सभी कहा ॥७३॥

संजय बोले

वासुदेव औ अर्जुन जी का,
पुलकित मन से कई सुना।
रोम खड़े करने वाला जो,
ऐसा यह संवाद सुना ॥७४॥

व्यास कृपा से योग ईश जो,
मन मोहन के श्री मुख से।
सुना योग जो परम गुह्य था,
थे संवाद जो अद्भुत से ॥७५॥

राजन, केशव अर्जुन के,
संवाद याद जब करता हूं।
सच कहता हूं बार-बार मैं,
खुद आनन्दित होता हूं ॥७६॥

हरि का अद्भुत रूप सलोना,
जब-जब स्मरण करता हूं।
बहुत-बहुत विस्मित हो-हो कर,
मैं आनन्दित होता हूं ॥७७॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥७८॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-संवादे मोक्षसंन्यासयोगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥

योगेश्वर हैं कृष्ण जहां पर,
जहां धनुर्धर अर्जुन हैं।
वहीं विजय श्री वैभव भी है,
नीति वहीं पर हर गुण है ॥७८॥

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के श्रीकृष्णार्जुन संवाद में मोक्ष संन्यासयोग
नामक अठारहवां अध्याय समाप्त ॥

संकेत—निम्नलिखित श्लोकों में एवं कु० म० के कतिपय आयतों में आश्चर्यजनक साम्य है। कृपया अवश्य देखें—

श्लोक सं०	४-९	कु०	म०	सूरह	३५,	आयत	३२
"	४५-४६	"	"	"	५१	"	१६
"	५१-५३	"	"	"	२८	"	३३
"	५६-५७	"	"	"	३१	"	२२
"	५८	"	"	"	४	"	१५१
"	६२	"	"	"	७३	"	८-९
"	६६-६८	"	"	"	६	"	१०६-१०९
		"	"	"	२०	"	१६
		"	"	"	३९	"	२९
		"	"	"	४३	"	३०
"	६९-७१	"	"	"	२	"	११२

□ □

डॉ० मोहम्मद हनीफ खान शास्त्री

जन्म : दुद्धी (सोनभद्र), उत्तर प्रदेश, तिथि-21 सितम्बर, 1952

पिता : स्व० श्री जुगनू अली, माता—स्व० श्रीमती सुन्नत अदा।

परवरिश : भाई श्री मोहम्मद रफीक एवं मोहम्मद शरीफ खान द्वारा

शिक्षा : बी० ए० तक—राजकीय महाविद्यालय, दुद्धी से
एम० ए० संस्कृत—काशी विद्यापीठ, वाराणसी से
पी-एच० डी०—कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय,
आचार्य—इतिहास-पुराराण-कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा

सम्प्रति : राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली में अनुसन्धान सहायक

प्रकाशन : 1. वेद और कुर्आन से—'महामंत्र गायत्री एवं सूरहफातिहा' एक-एक मन्त्रों को लेकर अर्थ, प्रयोग एवं माहात्म्य की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन—राष्ट्रीय एवं धार्मिक एकता को दृढ़ बनाए रखने की आकांक्षा से—

2. श्रीमद्‌भगवद् गीता एवं कुर्आन मजीद में सामंजस्य
3. मोहन गीता —श्रीमद्‌भगवद् गीता का हिन्दी पद्यानुवाद एवं फुटनोट में कुर्आन के एकीकरण का उल्लेख।
4. श्रीमद्‌भगवद् गीता और इस्लाम